Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वोदय-योजना

['सर्वोदय-योजना-समिति' द्वारा नियोजित]

ACC. No—

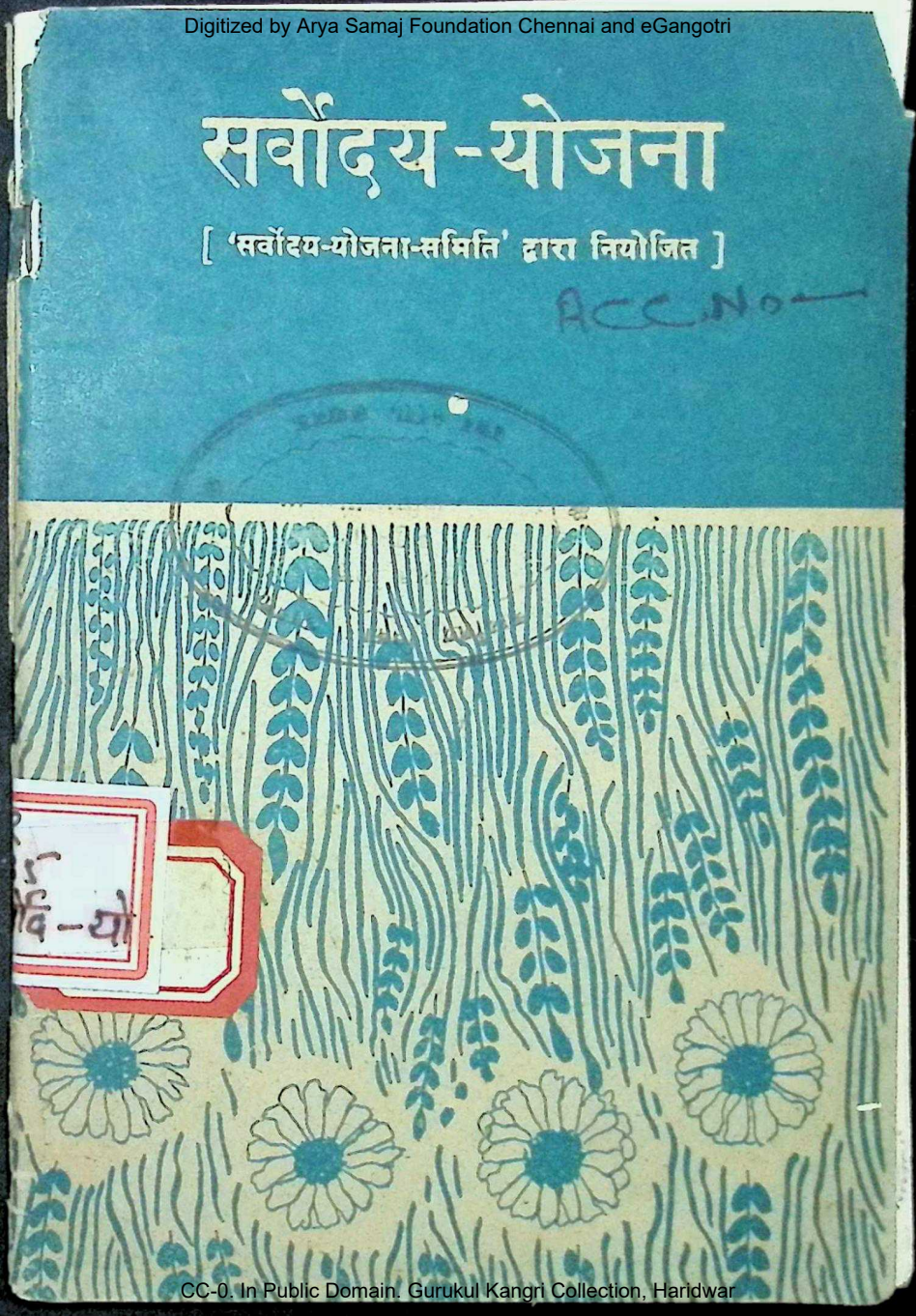

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1452

सर्वोदय-योजना

['सर्वोदय योजना समिति' द्वारा संयोजित]

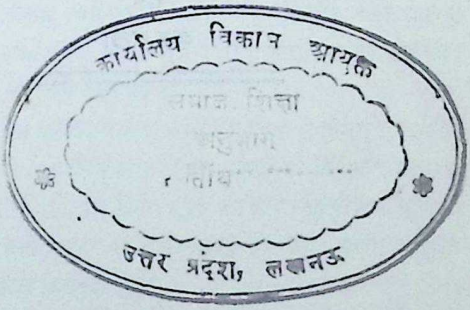

१९५६

सत्साहित्य प्रकाशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

P. R. T. C. Library
Gurukul Kangri (Hardwar)
Class No. 334
Book No. [illegible]
Acc. No. [illegible]

तीसरी बार : १९५६
मूल्य
आठ आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
देहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तावना

सर्वोदय-योजना के सिद्धान्तों का यह विवरण सर्वोदय प्लैनिंग कमेटी की ओर से प्रकाशित किया जा रहा है। इसलिए यहां सर्वोदय प्लैनिंग कमेटी के विषय में कुछ शब्द लिख देना आवश्यक है।

१९३७ में जब कांग्रेस ने पद ग्रहण किया तब कांग्रेस के आदर्शों और घोषणाओं के अनुसार राष्ट्र-निर्माण की एक योजना तैयार करने का प्रश्न स्वभावतः उसके सामने आया। कांग्रेस ने इस प्रयोजन के लिए एक नेशनल प्लैनिंग कमेटी नियुक्त की। उन अवस्थाओं को तो सब जानते ही हैं जो कि कांग्रेस के मार्ग में रुकावट बनकर खड़ी हो गईं। १९३९ में कांग्रेस ने पद त्याग दिया। १९४६ में उसने इसे पुनः ग्रहण कर लिया। १९४७ में देश स्वतंत्र हो गया। परन्तु स्वतंत्रता देश का विभाजन और उसके कारण उत्पन्न नई समस्याएं अपने साथ लेकर आई। और फलतः सामाजिक और आर्थिक योजना बनाने का प्रश्न पीछे जा पड़ा।

ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने एक कमेटी आर्थिक कार्यक्रम (इकौनोमिक प्रोग्राम) बनाने के लिए नियुक्त की। इस कमेटी की रिपोर्ट को कांग्रेस ने जयपुर-अधिवेशन में स्वीकृत कर लिया। देश की अन्य राजनीतिक पार्टियों और संगठनों ने भी अपने सुझाव और योजनाएं पेश कीं। परन्तु आर्थिक अवस्था बहुत जल्दी-जल्दी बिगड़ती गई।

जो रचनात्मक-कार्यकर्त्ता गांधीजी के सर्वोदय आदर्शों से प्रेरित थे और सीधा उनके मातहत काम कर चुके थे, वे इनसब घटनाओं को देख रहे थे और ग्रामों में रचनात्मक-कार्य में प्राप्त अपने दीर्घकालिक अनुभव के आधार पर एक योजना बनाने का यत्न कर रहे थे। उन्होंने अनुभव किया कि अब समय आ गया है जबकि देश की परिवर्तित अवस्थाओं में रचनात्मक कार्यक्रम और रचनात्मक कार्यकर्ताओं के भाग और स्थान को पुनः स्पष्ट कर दिया जाय। इस उद्देश्य से और गांधीजी के आदेश से फरवरी १९४८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रचनात्मक कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन वर्धा में बुलाने का निश्चय किया गया। गांधीजी स्वयं इस सम्मेलन में सम्मिलित होकर मार्ग प्रदर्शित करने वाले थे, परन्तु ईश्वर की इच्छा कुछ और ही थी।

इसके पश्चात् देश की परिस्थिति में सुधार के कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये, प्रत्युत परिस्थिति वद से वदतर होती गई। चारों ओर निराशा और असफलता की भावना व्याप्त हो गई। जो रचनात्मक कार्यकर्ता सर्वोदय के आदर्शों में विश्वास करते थे वे निरन्तर यह अनुभव करने लगे कि हमें एकत्र होकर देश की वर्तमान कठिनाई को हल करने के लिए और अपनी सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था का स्थायी आधार पर निर्माण करने के लिए अपनी एक योजना उपस्थित करने का यत्न करना चाहिए। इसलिए नवम्बर १९४९ के प्रथम सप्ताह में रचनात्मक कार्यकर्ताओं की एक छोटी-सी कांफ्रेंस वर्धा में श्री काका कालेलकर के सभापतित्व में की गई। उसमें निर्णय किया गया कि इस कांफ्रेंस के निश्चयों के अनुसार अपनी नीति का एक वक्तव्य तैयार करके कांफ्रेंस के अगले अधिवेशन में पेश किया जाय जो कि २२ और २३ दिसम्बर १९४९ को बुलाया जाय और उसमें रचनात्मक कार्यकर्ताओं को अधिक संख्या में निमंत्रित किया जाय तथा कांफ्रेंस की स्वीकृति के पश्चात् यह वक्तव्य गांधीजी के द्वितीय मृत्यु-दिवस ३० जनवरी को प्रकाशित करके देश की जनता के सामने उपस्थित कर दिया जाय।

इस निश्चय के अनुसार सर्वोदय आर्थिक सम्मेलन २२ और २३ दिसम्बर १९४९ को वर्धा में श्री काका कालेलकर के सभापतित्व में हुआ। इसमें देश के सब भागों से लगभग २०० रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मिलित हुए। प्रत्येक धारा पर पूरी तरह विवाद करने के पश्चात् सम्मेलन ने अपने सामने उपस्थित सर्वोदय-योजना के सिद्धान्तों का विवरण स्वीकृत कर लिया और अध्यक्ष को अधिकार दिया कि वह अन्य विशेषज्ञों और कार्यकर्ताओं से सलाह करने के पश्चात इसे ३० जनवरी १९५० को प्रकाशित करदें जिससे कि यह सर्वोदय के आदर्शों को भली-भांति प्रकट कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सम्मेलन ने अध्यक्ष से यह प्रार्थना भी की कि वह एक कमेटी नियुक्त कर दें जोकि इस विवरण को रचनात्मक संगठनों से कार्यान्वित करवावे और कांग्रेस से स्वीकृत करवाकर लोकमत को इसका पक्षपाती वनावे । तदनुसार एक सर्वोदय प्लैनिंग कमेटी निम्न सदस्यों की वनाई गई :—

श्री काका कालेलकर, श्री जे० सी० कुमारप्पा
श्री शंकरराव देव, श्री प्रफुल्लचन्द्र घोष
श्री श्रीकृष्णदास जाजू, श्री गुलजारीलाल नंदा
श्री आर० के० पाटिल, श्री जी० रामचन्द्रन
श्री जी० एम० सत्यनारायण, श्री जुगतराम दुवे, श्री के० मित्र
श्री आर० एस० धोत्रे, श्री झवेरभाई पटेल } मंत्री

इस कमेटी की वैठक दिल्ली में जनवरी के द्वितीय सप्ताह में हुई और उसने इस विवरण को प्रकाशन के लिए अन्तिम रूप दिया।

—मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१. सर्वोदय-योजना के सिद्धान्त ७
२. सर्वोदय के आदर्श और उद्देश्य १७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वोदय-योजना

: १ :

सर्वोदय-योजना के सिद्धांत

मानव-सभ्यता का इतिहास स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए किए गये संघर्षों का इतिहास है। प्राच्य दर्शन-शास्त्र का मत है कि मानव की उन्नति और विकास का लक्ष्य स्वतन्त्रता (मुक्ति अथवा मोक्ष) है। वह अपनी वासनाओं और कामनाओं के वन्धन से मुक्त होकर ही जन्म और मृत्यु के वन्धन से मोक्ष (स्वतन्त्रता) प्राप्त कर सकता है। मानव की समस्त महत्वाकांक्षाओं और प्रयत्नों का सार यही है कि वह स्वतन्त्र (वन्धन-मुक्त) किस प्रकार हो सकता है।

पुरातन मानव-समाज में मानव का उन्नत तथा विकसित होने का मार्ग, जाति, रीति-रिवाज, कठोर-परम्परा और छूत-छात की विघ्न-वाधाओं से अवरुद्ध था। इनके कारण समाज में अनेक विषमताएं और अनौचित्य उत्पन्न होकर प्रगति का मार्ग वाधा-पूर्ण हो गया था। जहां व्यक्ति के हाथ-पांव वंधे हुए हों वहां समष्टि की भी प्रगति नहीं हो सकती। वाद को राजा-महाराजा, अमीर-उमरा, पण्डित-पुरोहित और मुखिया तथा मालिक भी व्यक्तियों की स्वतन्त्रता का अपहरण करने लगे। साहित्य, कला और विज्ञान भी पुरातन विचारों और परम्पराओं से प्रभावित हो गये। व्यक्तियों के लिए प्रत्येक वात का निश्चय स्थायी रूप से समाज में उनकी हैसियत देखकर किया जाने लगा। मानव न केवल सामाजिक परिस्थितियों का, अपितु रोग, दरिद्रता, दुर्भिक्ष, भूकम्प और बाढ़ आदि उन प्राकृतिक शक्तियों का भी दास बन गया जिनको वह अपने वश में नहीं कर सका था। व्यक्तियों, सम्पत्तियों और विचारों का स्वतन्त्र संचार समाप्त हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान नवयुग का प्रारम्भ ही समाज, परिवार, धर्म, राजा, अमीर-उमरा, जात-विरादरी और मुखिया-मालिकों के विविध बन्धनों को खोलने तथा प्रकृति की शक्तियों को उपयोगी धाराओं में बांध लेने के साथ होता है। आज के समाज में मानव का मानव से सम्बन्ध हैसियत देखकर नहीं, प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्र सहमति से निश्चित किया जाता है। आज धार्मिक क्षेत्र में आचार और विचार की प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता है। राजनीति में लोकतान्त्रिक संस्थाओं का विकास हो चुका है और उनके कारण शासित ही शासक बन गये हैं। इस चहुँमुखी स्वतन्त्रता के आधार पर ही इस युग के आदर्शवादियों, कवियों, विचारकों और सुधारकों ने अपने स्वप्नों के महल खड़े किये हैं और निरन्तर प्रगति के भरोसे स्थायी शान्ति की आशाएं लगाई जा रही हैं।

परन्तु मानव के दुर्भाग्य-वश, पुराने बन्धन खुलने के साथ-साथ ही अनेक नये बन्धन फिर लग गये। इनके कारण समाज में नई विषमताओं और नये अन्यायों का जन्म हो गया। विज्ञान ने प्रकृति को वश में करके और नये भौगोलिक अनुसन्धानों के साथ मिलकर औद्योगिक क्रान्ति का युग प्रवर्तित किया। इसके कारण अभाव और न्यूनता के स्थान पर समृद्धि और प्रचुरता दिखाई देने लगी। परन्तु यह समृद्धि उत्पादन के एक संकीर्ण क्षेत्र तक ही सीमित रही, जिसका परिणाम यह हुआ कि मानव-समाज पुनः समृद्ध सम्पन्नों तथा अभाव-ग्रस्त विपन्नों और यंत्रों के स्वामियों तथा वेतन के दासों में विभक्त हो गया। धन की इस विषमता के कारण व्यक्तियों की हैसियतों में स्थायी विषमता आ गई। पुराने बन्धन और पुराने लगाव तो नष्ट ही हो चुके थे, अब उनका स्थान एकमात्र स्वार्थ और सम्पत्ति के बन्धनों ने ले लिया। इतना ही नहीं, ऐसे विचारक और दार्शनिक भी निकल आये जो इन संकीर्ण स्वार्थों की व्याख्या मानवता और परोपकार की भाषा में करने लगे और हमें विश्वास दिलाने लगे कि समस्त सदाचार की नींव ही स्वार्थ-प्रेरित बौद्धिक विचार-धाराओं पर रखी गई है।

धन की विषमता का प्रभाव केवल आर्थिक जीवन पर ही नहीं पड़ा, वह राजनीतिक और कुछेक अल्प-वर्ग सांस्कृतिक जीवन को भी कलुषित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगा। केवल धन का स्वामी होने के कारण शिक्षा, संस्कृति और सामाजिक तथा राजनीतिक प्रभाव के लाभों का उपभोग करने लगे। राजनीतिक क्षेत्र में कानून के सामने जन-मात्र की समानता और मत की स्वतन्त्रता केवल दिखावे की वस्तुएं रह गईं। लोकतान्त्रिक सिद्धान्त उदार होने के स्थान पर संकीर्णतर होते गये और लोकतन्त्र का अस्थि-पंजर-मात्र अवशिष्ट रह गया। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कच्चे माल, बाजारों के विस्तार, पूंजी लगाने के अवसरों और सस्ते मजदूरों की खोज ने बड़े-बड़े पूंजीपतियों और तथाकथित लोकतन्त्रीय साम्राज्यवादियों की सृष्टि कर डाली। ये लोग मिलकर औद्योगिक दृष्टि से अवनत एशिया और अफ्रीका की जनता का शोषण करने लगे। शक्तिशाली प्रतिस्पर्धी राष्ट्रों में भूमि की लोलुपता के कारण नये-से-नये अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष होने लगे और उनमें सफल होने के लिए विज्ञान का उपयोग नित-नये तथा अधिक-से-अधिक विनाशक शस्त्रास्त्रों के आविष्कारार्थ किया जाने लगा। यह होड़ अब परमाणु-बम तक पहुंच चुकी है। प्रत्येक नया युद्ध विश्व-व्यापी होता दीखने लगा है। जिस विज्ञान ने प्रकृति की शक्तियों को वश में करके उन्हें मानव की सेवा में प्रवृत्त कर दिया था, उसने ही अपने नये कठोर नियम बनाकर समाज को कार्य और कारण की नवीन परम्पराओं में जकड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि उद्योगों और व्यवसायों में केन्द्रीभूत होने की प्रवृत्ति बढ़कर मानव विज्ञान का स्वामी नहीं रहा, दास बन गया। शीघ्र ही यह प्रत्यक्ष हो गया कि हमारे समाज में निर्णय हमारी (व्यक्तियों की) इच्छाओं, अभिलाषाओं या आवश्यकताओं के अनुसार नहीं, अपितु भौतिक परिस्थितियों के अनुसार किये जाते हैं। समाज की प्रेरक शक्तियां अपनी ही हैं। इनके कारण ही मार्क्स ने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि "समाज-विज्ञान की मौलिक समस्या उस नियम का पता लगाना है जिसके अनुसार समाज उस अवस्था को उत्पन्न कर देता है जो कि बाद को स्वयं उसका स्थान ग्रहण कर लेती है।" वह इस परिणाम पर पहुंचा कि "मानव की सत्ता का (होने-न-होने का) निश्चय उसकी ज्ञान-शक्ति नहीं करती, प्रत्युत उसकी सामाजिक सत्ता उसकी ज्ञान-शक्ति का निश्चय करती है" (कैपिटल)। मार्क्स इस सामाजिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान-शक्ति की व्याख्या आर्थिक भाषा में करता है। वह कहता है कि समाज का आर्थिक संगठन, विशेषतः उत्पादन के साधन और उनका स्वामित्व, ही समस्त सामाजिक विकास का आधार है। और यह सामाजिक विकास न केवल हमारी संस्कृति, कला, विज्ञान और दर्शन का, अपितु व्यक्तियों के चरित्र का भी निर्माण करता है। सम्भवतः मार्क्स ने समाज की प्रगति के नियमों को समझ लिया था। उसके अनुसार मानव की इच्छा और प्रयत्नों के बावजूद ये नियम लागू होते ही हैं। मानव तो अधिक-से-अधिक इतना ही कर सकता है कि मानवी इतिहास ने अपनी जिस हिंसामय क्रान्ति का होना पहले से निश्चित कर दिया है उसकी आवश्यकता और अनिवार्यता को समझकर उसकी 'प्रसव-वेदना' को न्यून कर दे।

मार्क्स चाहता था कि पूंजीपतियों की जिस साम्राज्यवादी समाज-व्यवस्था ने व्यक्ति को सर्वत्र दास बना रक्खा है और लोकतन्त्र को असम्भव कर दिया है उसका हिंसामय क्रान्ति द्वारा नाश करके उसके स्थान पर ऐसी समाज-व्यवस्था की प्रतिष्ठा की जाय जिसकी नींव न्याय, समानता, व्यक्ति के अधिकारों और लोकतन्त्र पर रक्खी गई हो। वह व्यक्ति की स्वतन्त्रता और लोकतंत्र का पक्षपाती था, यह तो इसीसे स्पष्ट है कि वह सरकार (शासन-तन्त्र) का विनाश चाहता था। परन्तु मार्क्स के अनुयायी अपना काम भिन्न ही प्रकार कर रहे हैं। सोवियत रूस में सरकार (शासन-तन्त्र) की समाप्ति के कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होते, यद्यपि उसका राज-तन्त्र मार्क्सवाद के अनुसार संगठित किया गया बतलाया जाता है। इसके विपरीत वहां की सरकार सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक है। न केवल राजनीतिक और आर्थिक जीवन पर उसकी प्रभुता है, अपितु नैतिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक जीवन के अतिरिक्त वह कला, साहित्य, दर्शन और विज्ञान को भी अपने ही नियन्त्रण में रखती है। इसके अतिरिक्त हम ऐसे एकाधिकारपूर्ण शासन भी देखते हैं जिसमें व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्र को नष्ट करके उनकी नींव राष्ट्र, जाति और भौगोलिक राजनीति आदि के विचारों तथा कुछेक विशिष्ट योग्य व्यक्तियों के शासन करने के अधिकार पर रक्खी गई है। कम्यूनिज्म, नात्सीज्म और फ़ासिज्म आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सब एकाधिकारपूर्ण वाद, वैज्ञानिक और निर्णायक (डिटर्मिनिस्ट) होने का दावा करते हैं। वे न केवल यह बतलाते हैं कि भूत और वर्तमान कालों में सामाजिक और राजनीतिक शक्तियां किस प्रकार काम करती रही हैं, अपितु उनके विषय में भविष्यवाणी भी करते हैं। उनकी व्यवस्था में व्यक्ति का कोई स्थान नहीं है। उसे तो वे सामाजिक गठन का एक वाह्य रूप मात्र अथवा सामाजिक शरीर का एक जीव-कोश (सेल) मात्र मानते हैं। उनकी दृष्टि में इसकी समाज से भिन्न कोई सत्ता नहीं। पूंजीवादी समाज-व्यवस्था में जीवन को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैयक्तिक और सामूहिक आदि नाना पृथक् विभागों में वांटकर उनमें से प्रत्येक के ऐसे आचार और परम्पराएं नियत कर दिये जाते हैं जो एक दूसरे के विरोधी होते हैं। एकाधिकारपूर्ण वाद केन्द्र-प्रधान होते हैं। वे एक प्रकार के रहस्यमय भौतिकवाद में विश्वास रखते हैं। क्या व्यक्ति और क्या समष्टि सबके समान आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन का आधार वे एक ही सिद्धांत को मानते हैं। और वह है आर्थिक, जातीय या राष्ट्रीय दृष्टि से शक्ति या प्रभुता प्राप्त करने की आकांक्षा। पूंजीवाद और एकाधिकारवाद, दोनों ही विचार-धाराओं में, जीवन के विभिन्न पहलुओं में समन्वय, सम्बंध अथवा परस्परा-श्रय की कोई गुंजायश नहीं है। उनके विभिन्न दृष्टिकोणों का भी लक्ष्य एक ही है—आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का केन्द्रीकरण। अति-केन्द्रीकरण से वैयक्तिक स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है। पूंजीवाद का आरम्भ तो स्वतंत्रता से हुआ था, परन्तु उसने स्वतंत्रता को ही नष्ट कर दिया। अनियंत्रित पूंजी का परिणाम ही अनिवार्यतः यह होता है। मुक्तद्वार व्यापार और व्यापार के स्वाभाविक प्रवाह में हस्तक्षेप न करने की नीतियों ने उत्पादन के केन्द्रीकरण के साथ मिलकर *मोनोपलियों, कम्बाइनों,

---

*मोनोपली=किसी वस्तु के व्यापार या उत्पादन का एक ही व्यक्ति अथवा संगठन के हाथ में चला जाना। कम्बाइन और कार्टल, दोनों शब्दों का भाव एक ही है। इनका अभिप्राय है, अनेक व्यक्तियों या कम्पनियों का एकत्र संगठन, जिससे कि प्रतिस्पर्धा को समाप्त किया जा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कार्टेलों को जन्म दिया और और जब समाज में इन तीनों के कारण धन की तथा सामर्थ्य की अति विषमता हो गई तब लोकतंत्र का विचार प्रायः अर्थ-हीन हो गया। इस परिस्थिति की प्रतिक्रिया का ही परिणाम 'कम्यूनिज्म' (साम्यवाद) हुआ, जिसने कि न्याय, समानता और व्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर उत्तराधिकार-हीन व्यक्तियों की वकालत करते हुए हिंसामय उपायों तक का समर्थन किया। परन्तु उसने आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों को सरकार के हाथ में केन्द्रित करके व्यक्ति की स्वतंत्रता को तो नष्ट कर ही दिया, साथ ही सदाचार के महत्त्व को भी गौण कर दिया, जिसके बिना व्यक्ति का विकास हो ही नहीं सकता। 'कम्युनिज्म' के समान, सब प्रकार की 'फ़ासिज़्म' से भी स्वातन्त्र्य का और व्यक्तित्व का नाश हो जाता है।

बस, यहीं गांधीजी का सर्वोदय अपना वह आदर्श लेकर प्रविष्ट होता है, जिसमें व्यक्ति और समष्टि के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सदाचारिक जीवनों का एकत्र समन्वय करके दिखलाया गया है। गांधीजी जीवन को न तो ऐसे पृथक् विभागों में बांटते थे, जिनमें कि भलाई बुराई का और कर्त्तव्य-कर्मों का विचार एक-दूसरे से भिन्न हो और न वह उसे ऐसा एक मानते थे कि जिसमें कि विविधता की सर्वथा समाप्ति हो जाय। उनका दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य के सब कार्यों में ऐसा परस्पर संबंध रहता है कि उनसे आप-से-आप आन्तरिक एकता की सृष्टि हो जाती है। परन्तु यह एकता सदाचार के मौलिक नियमों पर आधारित होती है। इसी कारण वह 'डिटर्मिनिस्ट' (व्यक्ति की इच्छा के विरोधी, निश्चित कारणों और आवश्यकताओं के वशवर्त्ती) नहीं थे। उनका यह विश्वास नहीं था कि मानव-इतिहास का एक ही निश्चित और अपरिवर्तनीय मार्ग है और सुधारक स्थिर रहे तो उस "नियम का पता लग सकता है जिसके अनुसार समाज उस अवस्था को उत्पन्न कर देता है, जोकि वाद को स्वयं उसका स्थान ग्रहण कर लेती है।" न उनका यह विश्वास था कि मानव की "सामाजिक सत्ता ही उसकी ज्ञान-शक्ति का निश्चय करती है।" उनका मन्तव्य तो यह था कि जिस प्रकार व्यक्ति का चरित्र-गठन हो सकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी प्रकार किसी समाज-व्यवस्था द्वारा समाज का भी किया जा सकता है। समाज का अथवा इतिहास का कोई पूर्व निर्धारित अपरिवर्तनीय मार्ग नहीं है। सामाजिक संस्थाओं का निर्माण और गठन व्यक्तियों के ही आचार-विचार, आदर्श और जीवन से होता है। व्यक्ति और समाज की एक दूसरे पर क्रिया और प्रतिक्रिया होती है। व्यक्ति और समाज में पहले कौन हुआ, इस विचार में समय खोना ऐसे ही निरर्थक है, जैसे कि यह सोचना कि अण्डे और मुर्गी में से पहले किसका जन्म हुआ। इसी कारण वह न तो व्यक्ति की उपेक्षा करते थे और न प्रकृति के भौतिक साधनों की। गांधीजी भौतिक साधनों से घृणा नहीं करते थे। वह मानते थे कि जिस प्रकार मनुष्य की आत्मा को उन्नत करने के लिए उसका शरीर एक साधन है उसी प्रकार ऊँचा उठने के लिए समाज का गठन भी एक साधन है। प्रकृति के साथ मनुष्यों के व्यवहार में, गांधीजी आर्थिक साधनों को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते थे, क्योंकि उनके जीवन और सामाजिक संस्थाओं का निर्माण उनके द्वारा ही होता है। परन्तु उनको महत्त्वपूर्ण मानते हुए भी वह मार्क्सवादियों के समान सबकुछ उन्हें ही नहीं समझते थे। हां, उनकी उपेक्षा करने से जो हानि हो सकती है, उसे वह अवश्य स्वीकार करते थे।

यह सर्वविदित है कि भारत के सार्वजनिक जीवनों में गांधीजी का प्रवेश आर्थिक कारणों से ही हुआ। भारतीय जनता की दरिद्रता देखकर उनका मन अत्यधिक विचलित हो गया। वह बहुधा कहा करते थे कि मैं दरिद्र लोगों को ईश्वर का साक्षात्कार चावल की मुट्ठी में ही करा सकता हूँ। चम्पारन, खेड़ा, बोरसद और बारडोली आदि में उनके आन्दोलनों का आधार आर्थिक समस्याएं ही थीं। औद्योगिक झगड़ों में भाग उन्होंने आर्थिक कारणों से ही लिया था। १९३० में भी, जबकि वह किसी ऐसे कानून की तलाश में थे जिसे कि वह स्वयं सुगमता से भंग कर सकें और जनता से भी वैसा करने के लिए कह सकें, तब उन्होंने गरीबों के चुटकी-भर नमक को ही चुना, जिसपर कि उस समय भारी टैक्स लगा हुआ था। जब उन्होंने अपना रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किया तब उन्होंने राष्ट्र के भौतिक पुनरुत्थान में केन्द्र का स्थान खादी और ग्राम-उद्योगों को ही दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह न केवल आर्थिक जीवन का महत्त्व स्वीकार करके उसे उसका उचित स्थान प्रदान करते थे, वरन् वह यह भी मानते थे कि माल के उत्पादन तथा वितरण के साधनों का सदाचार, राजनीति और समाज पर भारी प्रभाव पड़ता है। वह ऐसी समाज-व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे जो सत्य और अहिंसा पर आधारित हो। वह अनुभव करते थे और दूसरों को भी अनुभव कराते थे कि ऐसी समाज-व्यवस्था का निर्माण पूंजीवादी पद्धति में नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी नींव ही श्रमिकों के नैतिक तथा भौतिक दोहन पर रखी जाती है। गांधीजी सब प्रकार के दोहन को, वह चाहे धन द्वारा हो चाहे अधिकार द्वारा, हिंसामय मानते थे। जहां हिंसा होती है वहां असत्य आ ही जाता है। वह चाहते थे कि माल का उत्पादन और वितरण, अर्थात् समाज के आर्थिक जीवन का संगठन, इस प्रकार हो कि उसमें हिंसा और असत्य का व्यवहार न करना पड़े। इसके लिए ही उन्होंने कृषि और उद्योग के विकेन्द्रीकरण की, यदि आवश्यकता हो तो उन्हें सहकारिता के आधार पर संगठित करने की, योजना बनाई थी। मार्क्सवादियों के समान, गांधीजी को, पूंजीवादी समाज-व्यवस्था का अन्त करने के लिए रक्तमय क्रान्ति आवश्यक नहीं जान पड़ती थी। वह दूसरों के श्रम से लाभ उठानेवालों को सम्पत्ति के स्वामित्व से वंचित करने के लिए हिंसा के प्रयोग के पक्षपाती नहीं थे। न वह यह चाहते थे कि उत्पादन के उनसब साधनों को एकाधिकारी राज्य की नौकरशाही के सुपुर्द कर दिया जाय जिनके विषय में ऐसी कल्पना की जाती है कि पूंजीवादी उनके मालिक बनकर फालतू धन कमाते अथवा श्रमिकों का दोहन करते हैं। वह तो पूंजीवाद को उसकी जड़ में ही, उत्पादन-व्यवस्था में ही, समाप्त कर देने के पक्षपाती थे। माल के उत्पादन का विकेन्द्रीकरण हो जाय तो न कोई मशीनों का मालिक रहेगा न कोई गुलाम। कारीगर अपने घर में जिन औजारों या छोटी मशीनों का प्रयोग करेगा उनका वह यदि मालिक बन जाय तो भी किसी प्रकार की आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक विषमता उत्पन्न नहीं होगी। कारीगर जिन औजारों से काम लेता है वे पूरी तरह उसके काबू में होते हैं, उस बड़ी मशीन की तरह बेकाबू नहीं होते जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम को भी वह भली-भांति नहीं समझता । उत्पादन के विकेन्द्रीकरण से पूंजी ऐसे मुट्ठी-भर लोगों के हाथ में जमा नहीं होने पाती, जिनकी संख्या निरन्तर घटती जाती है । इस व्यवस्था का परिणाम आप-से-आप आर्थिक समानता होता है । और यह समानता लोकतन्त्र में अति सहायक होती है । पूंजीवादी व्यवस्था में तो केन्द्रीभूत उत्पादन लोकतन्त्र का घातक होता ही है, कम्यूनिस्ट (साम्यवादी) व्यवस्था में भी उत्पादन का स्वामित्व और प्रबन्ध राज्य के हाथ में केन्द्रित हो जाने का परिणाम लोकतंत्र पर वही होता है । दोनों व्यवस्थाएं व्यक्तित्व का पूरा-पूरा अन्त कर देती हैं। सम्भव है कि कम्यूनिस्ट (साम्यवादी) व्यवस्था में व्यक्तियों को अपनी आवश्यकता की वस्तुएं शीघ्र और सस्ती मिलती हों; परन्तु उसमें ऐसा उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण करके ही होता है । और स्वतन्त्रता के बिना राजनीति, संस्कृति या सदाचार किसी क्षेत्र में कोई उन्नति नहीं हो सकती ।

एक युक्ति यह दी जाती है कि उत्पादन के विकेन्द्रीकरण से माल कम बनता है और रहन-सहन का दर्जा नीचा रहता है । गांधीजी ऐसी किसी सम्भावना से नहीं डरते थे, क्योंकि उन्हें भारत की करोड़ों की आबादी और उसकी भयंकर बेरोजगारी का सदा ध्यान रहता था । वह कहते थे कि यदि जड़-यंत्रों को काम देकर चेतन मानव को निकम्मा कर दिया जाय तो समाज का सदाचार गिर जायगा । परन्तु जहां आवश्यकता हो वहां यान्त्रिक शक्ति से चलनेवाले ऐसे यन्त्रों के प्रयोग में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी, जिनसे श्रम की बचत होती हो और जिनका सब लोग बांट कर उपयोग कर सकें । यह बात बिजली की शक्ति से हो सकती है । इसलिए वह बिजली के प्रयोग के विरोधी नहीं थे । गांधीजी रहन-सहन का दर्जा एक हद से ऊपर उठाने के पक्षपाती नहीं थे । उनका विचार था कि यद्यपि भौतिक साधनों से औसत आदमी को अपनी बौद्धिक तथा सदाचारिक उन्नति करने में सुगमता होती है, तथापि वह उनका गुलाम (वशवर्ती) बन जाता है और एक हद से बढ़ जाने पर उसकी सदाचारिक उन्नति रुक जाती है ।

तो भी गांधीजी मानते थे कि वर्तमान परिस्थितियों में केन्द्रीभूत बड़े उद्योगों की एकदम समाप्ति नहीं की जा सकती । आना-जाना, माल का ढोना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(परिवहन), संदेश-संचार और अन्य कुछ मूल उद्योगों को बड़े कारखानों में केन्द्रीभूत करना ही पड़ेगा। परन्तु इस प्रकार के केन्द्रीभूत उद्योगों का संचालन और नियन्त्रण, सार्वजनिक कारपोरेशनों द्वारा, और आवश्यकता हो तो राज्य द्वारा, सर्वसाधारण के लाभार्थ ही किया जाना चाहिए।

अपनी नवीन समाज-व्यवस्था को समानता, स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र की नींव पर दृढ़तापूर्वक आधारित करना हो तो राजनीति के अतिरिक्त आर्थिक क्षेत्र में भी विकेन्द्रीकरण करना पड़ेगा। व्यक्तियों का दोहन (उनसे दूसरों के लाभार्थ काम लेने की प्रक्रिया) केवल त्रुटिपूर्ण आर्थिक संगठनों द्वारा ही नहीं, त्रुटिपूर्ण राजनीतिक संगठनों द्वारा भी होता है। केन्द्रीभूत लोकतन्त्र में नौकरशाही की और एकाधिकारवादिता की प्रवृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं। गांधीजी देश का विभाजन ऐसे प्रदेशों में करना पसन्द करते थे जो अपनी आर्थिक आवश्यकताएं स्वयं पूरी करने के अतिरिक्त अपनी राजनीतिक व्यवस्था भी आप ही कर सकें। वह प्रत्येक प्रदेश को एक छोटे गणतंत्र के रूप में देखना चाहते थे। उनका विश्वास था कि लोकतंत्र का वास्तविक अभिप्राय ही अपने मामलों की व्यवस्था आप कर सकने की स्वतंत्रता है और इसपर भली-भांति आचरण छोटी इकाइयों में ही हो सकता है। इन इकाइयों को अपने मामलों के शासन का कार्य सीधा अपनी देख-रेख में करना चाहिए। राष्ट्र ऐसी अर्द्ध-स्वतंत्र इकाइयों का एक प्रकार का संघ होगा।

गांधीजी द्वारा पुरस्कृत समाज-व्यवस्था का संक्षिप्त रूप यही है। इस प्रकार की समानता पर आधारित और आर्थिक तथा राजनीतिक दोहन से मुक्त समाज-व्यवस्था में ही औसत आदमी स्वतंत्र सदाचारपूर्ण और आध्यात्मिक जीवन बिता सकता है। अन्यथा, जिस प्रकार धन और सामर्थ्य पर कुछ अल्पसंख्यकों का एकाधिकार है, उसी प्रकार सदाचारपूर्ण और आध्यात्मिक जीवन भी कुछेक साधु और विद्वान लोगों की ही अपवाद रूप थाती रह जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: २ :

सर्वोदय के आदर्श और उद्देश्य

इसलिए आदर्श क्रमशः एक ऐसे अहिंसक समाज का संगठन है जिसमें कि मानव वैयक्तिक तथा सामाजिक पूर्णता प्राप्त कर सके, जिसमें जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से अधिकतम प्रादेशिक स्वावलम्बिता हो और जो अपने सामाजिक, सदाचारिक तथा सांस्कृतिक लक्ष्यों की प्राप्ति सहोद्योगपूर्वक करता हो।

अहिंसक समाज की ओर हमारी प्रगति का कदम हिंसा का प्रयोग समाप्त कर देने की हमारी सामर्थ्य पर निर्भर करेगा। हिंसा प्रायः निम्न तीन रूपों में प्रकट होती है —

(१) दोहन में अर्थात् मनुष्य का मनुष्य द्वारा उपयोग किया जाने में,

(२) अपराध् करने और दण्ड देने में, और

(३) युद्ध में।

इसलिए समाज का जीवन एक परिवार के नमूने पर ढालने का यत्न करना चाहिए, जिससे कि अपनी आवश्यकता के लिए एक-दूसरे का उपयोग करने की (दोहन की) भावना समाप्त हो जाय, बुराई का प्रतिकार भलाई से किया जाय, अपराधों को चिकित्सनीय रोग माना जाय और युद्धों को झगड़े तय करने का साधन समझना छोड़ दिया जाय।

समाज में दोहन की समाप्ति और जीवन में पूर्णता की प्राप्ति के लिए रहन-सहन की सादगी अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार के समाज-निर्माण के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति जीवनोपयोगी साधारण वस्तुएं बनाने के प्रयोजन से थोड़ा-बहुत शारीरिक श्रम नित्य करे। प्रदेशों को अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में अधिकाधिक स्वावलम्बी होना चाहिए। हमारा मत तो यह है कि जो भी वस्तु विकेन्द्रीकृत उत्पादन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेत्र में आती हो उसे केन्द्रीभूत उद्योग (इंडस्ट्री) द्वारा उत्पन्न न किया जाय और केन्द्रीभूत उद्योगों की सीमा निर्धारित कर दी जाय। प्रादेशिक स्वावलम्बिता से भाईचारे और मानव-सम्बन्धों की भावना घटती नहीं, प्रत्युत अधिकाधिक बढ़ती और व्यापक ही होती है। इसलिए लोगों को अन्तः-प्रादेशिक, सामाजिक, सदाचारिक और सांस्कृतिक प्रयत्नों में बुद्धि-पूर्वक तथा जिम्मेदारी के साथ भाग लेने के लिए अधिकाधिक शिक्षित और सज्जित करना चाहिए।

मानव के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने के लिए प्रादेशिक स्वावलम्बिता अति आवश्यक है। परन्तु उसमें (प्रादेशिक स्वावलम्बिता में) भी आर्थिक और राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा धन, अधिकार और आबादी को एक स्थान पर केन्द्रित न होने देने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

एसा समाज जात-पाँत और वर्ग या श्रेणी पर आधारित नहीं होगा और इसी कारण उसमें सबके लिए उन्नति का समान अवसर होगा। इससे मनुष्यों, पशुओं और प्रकृति के सब साधनों का पूरा-पूरा और उचित उपयोग हो सकेगा और प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति-भर उत्पादन-वृद्धि का प्रयत्न करते हुए जीवन का आवश्यक स्तर प्राप्त करने में पूरी तरह सहायक हो सकेगा।

सम्पत्ति—जिस सम्पत्ति का उत्पादन समाज करेगा, उसपर नियंत्रण भी समाज का रहेगा। हां, उसका स्वामी कोई व्यक्ति भी हो सकता है और समाज भी। परन्तु वर्तमान प्रतिस्पर्धा-पूर्ण अर्थचक्र का स्थान सहोद्योग पर आधारित सामाजिक अर्थ-व्यवस्था ले लेगी।

खेती की जमीन का मालिक जमीन जोतनेवाला होगा, परन्तु उसके नियमों को निर्धारित समाज करेगा।

विकेन्द्रीकृत उद्योगों में उत्पादन के औजारों पर स्वामित्व या तो व्यक्तियों का होगा और या सहोद्योग संस्थाओं का।

केन्द्रीभूत उद्योगों पर स्वामित्व समाज का होगा और उनका संचालन सरकार, पब्लिक कारपोरेशनों और सहोद्योग समितियों में से किसीके द्वारा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपभोग

राष्ट्रीय आय—सम्पत्ति पर अधिकार की उक्त व्यवस्था, अधिकतम प्रादेशिक स्वावलम्बिता के आधार पर उत्पादन के संगठन और विकेन्द्रीकरण का परिणाम यह होगा कि मानव-शक्ति का उपयोग उत्कृष्टतम लाभ के लिए किया जायगा और आवादी में विना काम किये पेट भरनेवालों की संख्या काम करनेवालों की तुलना में बहुत घट जायगी इसके अतिरिक्त भूमि पर बोझ घट जाने के कारण प्रति व्यक्ति पीछे उत्पादन का परिमाण बढ़ जायगा।

हमारा विश्वास है कि लोगों की अन्न, वस्त्र, निवास और जीवन की उचित आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए देश में धन का उत्पादन पर्याप्त हो जायगा और सरकार का लक्ष्य चूंकि शासन न्यूनतम करने का तथा नीति राष्ट्र के शासन-कार्य में अहिंसा का अधिकाधिक व्यवहार करने का होगा, इसलिए उसकी भी आर्थिक आवश्यकताएँ विना विशेष कठिनाई के पूरी हो जायंगी। भौतिक सुखों की प्राप्ति के अतिरिक्त, लोगों को संतोष अधिक होगा और इसी कारण सर्वत्र सुख और समृद्धि के भाव दृष्टिगोचर होंगे।

'स्वदेशी' के सिद्धांत में जो पड़ोसी-धर्म अर्थात् पड़ोसी की सेवा का भाव निहित है, वह अहिंसा का ही एक अंग है, और देश की वर्तमान आर्थिक दशा ऐसी है कि उसमें कठोर जीवन बिताने की अत्यन्त आवश्यकता है, इसलिए राष्ट्र जिस किसी वस्तु के बिना निर्वाह कर सके, उसका विदेशों से आयात और जिन वस्तुओं की यहां न्यूनता हो, उनका यहां से निर्यात नहीं होने देना चाहिए।

जीवन-मान—न्यूनतम आय इतनी होनी चाहिए कि उससे भोजन, वस्त्र और निवास की आवश्यकताएँ उचित-रूपेण पूरी हो जायं। आज के बाज़ार-दरों को देखते हुए एक औसत परिवार के लिए यह राशि १००) मासिक रखी जा सकती है। ऐसा यत्न करना चाहिए कि इस न्यूनतम लक्ष्य पर हम यथाशीघ्र पहुँच जायं। आर्थिक जीवन के सभी विभागों में आय की असमानता को समान कर देना चाहिए। इस प्रकार की समाज-व्यवस्था में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यूनतम और अधिकतम आयों का अन्तर इतना नहीं होना चाहिए कि वह जनता की विचार-दृष्टि में चुभता रहे।

आयों की निर्धारित अधिकतम सीमा का पालन सभी आर्थिक वर्गों द्वारा दृढ़ता से कराया जाना चाहिए और किसीके भी पास इतनी संपत्ति नहीं रहने देनी चाहिए कि उससे नियत अधिकतम से भी अधिक आय हो। इस समय सब आयों का अधिकतम परिमाण वर्तमान न्यूनतम का २० गुणा नियत करके, उचित अवधि के भीतर, उसे न्यूनतम के १० गुणा पर ले आना चाहिए।

इस प्रकार की व्यवस्था पर्याप्त होनी चाहिए कि शिक्षण और चिकित्सा की सेवा सबके लिए स्वल्प मूल्य पर सुलभ हो। सबके लिए पुस्तकालयों, छात्रों तथा उच्च विद्यार्थियों के लिए अनुसंधान-प्रयोगशालाओं, चिकित्सकों के लिए चिकित्सा-यंत्रों और सबके लिए आने-जाने आदि की सुविधाओं की भी ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि उनपर स्वामित्व तो समाज का रहे परन्तु उनके कारण किसी वर्ग की कार्य-कुशलता में कोई अन्तर न आने पावे।

उत्पादन

उत्पादन-व्यवस्था को निम्न सिद्धांतों का पालन करना चाहिए :

१. उससे धन का वितरण व्यापक और समान हो।
२. सुख-सम्भोग की वस्तुएँ तैयार करने से पहले उसे लोगों की आवश्यकताएँ पूरी करनी चाहिए।
३. उसे कार्यकर्ताओं की सब प्रकार की योग्यताओं का उपयोग करने तथा उनका व्यक्तित्व विकसित करने का साधन रहना चाहिए।
४. उससे समाज में शांति और सुख की वृद्धि होनी चाहिए।
५. उसे धन का उत्पादन यथा-शक्ति कुशलता से करना चाहिए।

कृषि

उत्पादन की योजनाओं का केन्द्र कृषि को और पशु-पालन सरीखे कृषि से संबद्ध उद्योगों को रखना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि हमारे देश के विभिन्न राज्यों में जमीन-बन्दोबस्त, खेती की हालत (कृषि की परिस्थितियां) और उसके तरीके विभिन्न प्रकार के हैं, परन्तु अकुशलता, उत्पादन की न्यूनता और खेती की इकाइयों की लघुता हमारी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में सर्वत्र एक-सी है।

भूमि-सुधार--देश के जमीन-बन्दोबस्त में व्यापक सुधार किये बिना खेती की पैदावार और कुशलता में कोई स्थायी उन्नति नहीं हो सकती। इसलिए जमींदारी की समाप्ति यथाशीघ्र की जानी चाहिए। परन्तु जमींदारी-प्रथा समाप्त हो जाने के पश्चात् भी खेती न करनेवाले लोगों का ध्यान जमीन की ओर बड़ी संख्या में लगा रहेगा। हमारा खयाल है कि भारत की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में बिचौलियों का कोई स्थान नहीं होना चाहिए और समाज द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार भूमि पर स्वामित्व उसे जोतनेवालों का ही रहना चाहिए। विधवाओं, नाबालिगों (अवयस्कों) और इसी प्रकार के अन्य असमर्थों के अतिरिक्त किसीको भूमि किराये पर उठाने की इजाजत नहीं होनी चाहिए। काश्तकार केवल उनको मानना चाहिए जो खेती के काम में स्वयं शारीरिक श्रम करें और उसमें अन्य प्रकार भाग लें।

जो लोग निरन्तर छः वर्ष से जमीन जोत रहे हैं उनको तुरन्त ही कानून द्वारा रक्षित काश्तकार मान लेना चाहिए। खुश्क और तर इलाकों में लगान क्रमशः पैदावार के $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{4}$ भाग से अथवा मालगुजारी के दुगने से अधिक नहीं होना चाहिए। लगान का निश्चय काश्तकार की सहूलियत देखकर करना चाहिए और समय-समय पर नीचे वर्णित जमीन-अदालत द्वारा उसकी जांच होती रहनी चाहिए। तमाम बेदखलियां रोक देनी चाहिए। स्थानीय जमीन-अदालतों को अधिकारों का एक लेखा तैयार करना चाहिए। इन अदालतों में सर्वोदय-आदर्श, काश्तकारों और भू-स्वामी किसानों, तीनों के प्रतिनिधि रहने चाहिए। भूमि के स्वामी को मौका दिया जायगा कि वह अपनी भूमि के उतने भाग पर पुनः अधिकार करले जितनी उसकी अपनी जोती हुई खेती को लाभदायक बनाने के लिए आवश्यक हो। काश्तकार को भी अधिकार होना चाहिए कि वह जमीन को उस उचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य पर खरीद ले जो कि उचित लगान तय करने के लिए नियत जमीन-अदालत द्वारा निर्धारित किया जाय। इस खरीद में ग्रामीण-ऋण-एजेंसी को भी सहायता देनी चाहिए।

ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का नमूना––वर्तमान ग्रामीण-अर्थ-व्यवस्था इतनी उलझी हुई है और उसे जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है वे इतनी विविध हैं कि भूमि के उपयोग की किसी एक पद्धति से आज की सब आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो सकतीं। इसलिए देश की ग्राम-व्यवस्था करते हुए ऐसी नीति अपनानी चाहिए कि उससे ऊपर बतलाई गई उत्पादन-व्यवस्था के सब सिद्धांतों का पालन हो जाय। खेत चाहे अनेक प्रकार के हों, परन्तु हमें जो ग्राम-व्यवस्था करनी है, उसके आधार-भूत सिद्धांत एक-से रहने चाहिए।

खेतों के परिमाण––खेतों के प्रकार उनके छोटे-बड़ेपन के अनुसार विविध होने चाहिए। उनके परिमाण को देखकर उनकी तीन श्रेणियाँ बनाई जा सकती हैं––लघुतम, स्वावलम्बी और विशालतम।

मूल विचार यह है कि स्वावलम्बी खेतों का परिमाण विविध प्रदेशों की खेती का हिसाब-किताब देखकर निम्न सिद्धांतों के अनुसार निश्चित किया जाय :––

१. किसान उसके सहारे अपने रहन-सहन को उचित स्तर पर रख सके।

२. उससे एक औसत परिवार को और कम-से-कम एक जोड़ी बैल को पूरा-पूरा काम मिल सके। पूरे-पूरे काम का मतलब यह नहीं है कि किसीको फुरसत या स्त्रियों को अपनी उन्नति का अवसर भी न मिले। उनको फुरसत का और अपनी उन्नति का पर्याप्त समय मिलना चाहिए।

स्वावलम्बी से भी छोटे खेतों का बन्दोबस्त फिर करने की आवश्यकता है। उनकी संख्या और अनुपात इतना अधिक है और वे इतनी दूर-दूर तक फैले हुए हैं कि उनका पुनः बन्दोबस्त करना बन्दोबस्त महकमे की संगठन सामर्थ्य से बाहर की बात है। इस कारण खेतों का एक लघुतम परिमाण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चित कर देना पड़ेगा। ये खेत स्वावलम्बी खेतों से छोटे और इन अर्थों में अ-स्वावलम्बी होंगे कि उनके सहारे किसान अपना रहन-सहन एक उचित स्तर पर नहीं रख सकता, परन्तु वे इतने छोटे नहीं होंगे कि उनमें खेती हो ही न सके और उनकी पैदावार का ठीक-ठीक हिसाब तक न रखा जा सके।

विशालतम खेत—जो लोग खेती के लिए जमीन चाहते हैं उनकी संख्या की तुलना में उपलब्ध जमीन थोड़ी है और आजकल जिस ढंग से खेती की जाती है उसके लिए आवश्यक व्यवस्था के और पूंजी के साधन औसत किसान की सामर्थ्य से बाहर नहीं हैं, इसलिए विशालतम खेतों का परिमाण स्वावलम्बी खेत का तिगुना नियत किया जा सकता है।

हम यह भी समझते हैं कि विशालतम खेत का परिमाण नियत करते हुए ऊपर अधिकतम आय की सीमा निर्धारित करने के विषय में जो कुछ कहा जा चुका है उसे ध्यान में रखना चाहिए।

निःसन्देह उन संयुक्त परिवारों के विषय में, जिनके सब सदस्य खेती के काम में शारीरिक श्रम करते हैं, और समाज-सेवा करनेवाली संस्थाओं के विषय में अपवाद करने ही पड़ेंगे।

खेतों के प्रकार

मालिक किसान—लघुतम से विशालतम तक की गणना में आने वाले सब खेतों की भूमि पर स्वामित्व, उचित नियमों के अनुसार, जमीन स्वयं जोतनेवालों का होगा। इस प्रकार के पारिवारिक खेतों को अपनी पैदावार बेचने और खेती के लिए ऋण लेने में ग्राम की मल्टि-पर्पस कोआप-रेटिव (विविध काम करनेवाली सहकारी संस्था) की सहायता बिना किसी अपवाद के अवश्य लेनी ही चाहिए।

भूमि पर स्वामित्व की ऐसी व्यवस्था आज के युग की सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं से संगत नहीं है जिसमें कि मालिक अपनी भूमि का सदुपयोग स्वेच्छा के अनुसार कर सके। इसलिए भूमि पर अधिकार किसान और समाज में बंटे हुए होने चाहिए। किसान को निम्न शर्तों के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़मीन की जोत हस्तान्तरित करने और वंश-परम्परा-पूर्वक अपने परिवार वालों को देने का स्थायी अधिकार होगा :

१. वह जमीन किराये पर न उठावे ।

२. जमीन हस्तान्तरित करते हुए वह पहले के उस नियम का पालन करे जो कि उचित अधिकारी द्वारा नियत कर दिया गया हो और जमीन का मूल्य उचित ही ले, अत्यधिक न ले ।

३. वह अच्छे किसान की कसौटियों पर खरा उतरे और लैण्ड-कौन्सिल (जमीन-पंचायत) द्वारा समय-समय पर नियत फस्लों की योजना का पालन करता रहे ।

जो अधिकार सारे समाज के हैं उनका प्रयोग अपनी विविध एजेन्सियों द्वारा लैण्ड-कौंसिल करेगी । इन एजेन्सियों का आधार गांव-पंचायत होगी, जिसका निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा । पड़ती भूमि, गांव के अन्य स्थानों, तालाबों और जंगलों आदि गांव की सम्मिलित जायदाद पर नियन्त्रण पंचायत का होगा । किसानों से जमीन-लगान वसूल करने की जिम्मेवारी भी उसकी ही होगी ।

सहकारी साझे की खेती—लघुतम खेतों से छोटे सब खेतों को साझे की सहकारी खेती में संगठित कर देना चाहिए । इसका यह मतलब नहीं है कि लघुतम से छोटे सब खेतों को मिलाकर एक ही ऐसा बड़ा सहकारी खेत बना दिया जाय कि उसके कारण किसान अपना व्यक्तित्व खोकर अपनी उत्पादक सूझ-बूझ को भी भुला बैठे । जब कभी लघुतम खेतों के मालिक आवश्यक संख्या में मिलकर विशालतम परिमाण का खेत बनाने को तैयार हो जायं तभी सहकारी खेती आरम्भ की जा सकती है । किसानों में यदि साझे की सहकारी खेती के विरुद्ध कोई विचार हो तो उन्हें इस कार्यक्रम पर धीरे-धीरे अमल करके, प्रचार द्वारा समझा-बुझाकर, उदारता-पूर्वक सरकारी सहायता देकर और जमीन का इन्तजाम करने वाले महकमे में विशेषरूपेण तैयार किए हुए कर्मचारियों से इस काम को अधिक न्यायपूर्वक करवाकर दूर किया जा सकता है । इस योजना का आरम्भ पहले कुछ चुने हुए स्थानों पर, सोच समझकर बनाई हुई अवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार, जमीन-बन्दोवस्त के साथ संलग्न प्रोविन्शियल कोऑपरेटिव फार्मिग बोर्ड के नियन्त्रण में करना चाहिए।

सामूहिक खेती—वे जमीन के श्रमिकों की जमीन की भूख शान्त करने के लिए और बड़े परिमाण की यान्त्रिक खेतियों की आर्थिक सम्भावनाओं की परीक्षा करने के लिए परीक्षण के रूप में नौतोड़ (रिक्लेम्ड) भूमियों पर बे-जमीन श्रमिकों से सामूहिक खेती करवाकर देखी जा सकती है। ट्रेक्टर आदि यन्त्रों का प्रयोग जमीन को तोड़ने सरीखे आवश्यक कार्यों तक ही सीमित रखना चाहिए। आरम्भ में आवश्यक सहायता जमीन-बन्दोवस्त के महकमे को करनी चाहिए और जैसे-जैसे श्रमिक खेती का इन्तजाम करना सीखते जायं वैसे-वैसे लैण्ड-कौंसिल का नियन्त्रण हटते जाना चाहिए।

अनुसन्धान और परीक्षण के खेत—लैण्ड-कौंसिल के निरीक्षण और व्यवस्था में ऐसे अनेक खेत रहेंगे जिनमें कि खेती के अच्छे तरीके, अच्छे किस्म के बीज और सस्ते तथा अच्छे औजार तैयार करने के परीक्षण होते रहेंगे।

जमीन का इन्तजाम—इस समय जमीन के इन्तजाम और उससे सम्बद्ध अन्य व्यवस्थाओं में सबसे बड़ी कमी यह है कि उसमें गांव की आर्थिक आवश्यकताओं और समस्याओं को हल करने पर निरन्तर और सुसंगत दृष्टि नहीं रखी जाती। उसमें हमदर्दी और सहानुभूति का अभाव है। दफ्तरी कार्यवाइयों के कारण हरेक काम में बहुत देर लगती है। जमीन का इन्तजाम विविध कर्त्तव्यों को बांट कर किया जाना चाहिए। उसका संगठन एक ही रखकर उसकी प्रादेशिक इकाइयां अनेक होनी चाहिए। उनमें सर्वोदय दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त विशेषज्ञ और किसानों के प्रतिनिधि भी होने चाहिए। इस समय जो अधिकार और जिम्मेदारियां गांवों की आर्थिक समस्याओं को हल करनेवाले अनेक महकमों को सौंपी हुई हैं वे सब इनके सुपुर्द होनी चाहिए। इस शासन-व्यवस्था के कर्त्तव्यों का विकेन्द्रीकरण करने के लिए अधिकतम प्रयत्न करना चाहिए और सारे संगठन की नींव में जो इकाइयां हों उन्हें अधिकाधिक अधिकार देने चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई ग्राम-मण्डलों को मिलाकर प्रादेशिक संगठन बना दिये जायंगे और उनकी आधारभूत इकाई गांव होगी।

इन सबके ऊपर एक केन्द्रिक लैण्ड-कौंसिल होगी जो कि प्रादेशिक संगठनों की प्रतिनिधि होगी। वह फसलों की योजना बनायगी और दुर्लभ साधनों की प्राथमिकता का क्रम निश्चित करेगी। प्रादेशिक लैण्ड-कौंसिलें विधि इकाइयों की प्रतिनिधि होंगी और उनके कर्त्तव्य तथा जिम्मेदारियां अधिक विस्तृत होंगी। प्रादेशिक लैण्ड-कौंसिलों की सहायता करने के लिए ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था करनेवाले, सहकारी खेती के प्रबन्धकर्त्ता और मजदूरी तथा मूल्य-निर्धारक आदि अनेक बोर्ड होंगे।

रूरल इकोनोमिक सिविल सर्विस--(ग्रामीण अर्थ-चक्र का सेवक-मण्डल)—जबतक देश भूमि सम्बन्धी काम करनेवाले ऐसे व्यक्तियों की एक सेना संगठित नहीं कर लेगा जिनकी भावना जिहादी हो तबतक न तो जनता के लिए पर्याप्त खाद्य उत्पन्न हो सकेगा और न पशुओं के लिए पर्याप्त चारा। हमें ऐसे मनुष्यों की बड़ी संख्या में आवश्यकता है जो कि निम्न स्तर के लोगों की गरीबी, निर्धनता, निरक्षरता और अस्वास्थ्य की परिस्थितियों में ही रहकर उनके सुख-दुःख में भाग ले सकें। इनसब लोगों को सच्चा सेवक, दृढ़ संकल्पवान और असीम धैर्यशाली होना चाहिए। इस कार्य के लिए ऐसे स्त्री-पुरुषों की भरती करनी चाहिए जो साधारणतया शिक्षित होने के अतिरिक्त उचित दृष्टिकोण वाले हों। उन्हें कृषि सहकारी-आन्दोलन और कृषि-सम्बन्धी उद्योगों के संगठन की शिक्षा देकर रूरल इकोनोमिक सिविल सर्विस (ग्रामीण अर्थ-चक्र का सेवक-मण्डल) में सम्मिलित करने से पहले कुछ समय तक अभ्यास के लिए सहकारी और सम्मिलित खेतियों पर रखना चाहिए।

प्रादेशिक लैण्ड-कौंसिलें अपनी योजनाएं बनाने में और ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के विकास तथा प्रबन्ध में सर्वथा स्वतंत्र होंगी। परन्तु कुछ समय तक इनकी साधारण नीति को राज्य की सरकार द्वारा स्वीकृत कराना आवश्यक होगा।

कौन्सिलें अपने कर्त्तव्यों का पालन स्वतन्त्रता से और प्रभावशाली रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कर सकें इसके लिए उनकी आय के साधनों का स्वतन्त्र होना आवश्यक है।

कृषि की योजनाएं—फसलों की योजनाएं बनाने के लिए देश के मनुष्यों और पशुओं, दोनों की सब आवश्यकताओं का हिसाब लगा लेना आवश्यक है। ऐसा करते हुए सन्तुलित भोजन के सिद्धान्त और रहन-सहन के उचित स्तर की रक्षा का ध्यान रखा जाना चाहिए। इस योजना का लक्ष्य यह होना चाहिए कि प्रत्येक प्रदेश अपनी कृषि-सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए अधिकाधिक स्वावलम्बी होता जाय। प्रत्येक प्रदेश की उत्पादन-सामर्थ्य और आवश्यकताओं को समस्त देश की आवश्यकताओं के साथ समन्वित करना और यह ध्यान रखना चाहिए कि केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की शक्तियों में सन्तुलन रहे। योजनाओं का निर्माण आरम्भ में गांवों की बस्तियों में किसानों की सभाओं में किया जायगा। प्रादेशिक कौन्सिलें उसमें आवश्यक सुधार कर देंगी और उनके अन्तिम रूप का निश्चय लैण्ड-कौन्सिल में होगा। परन्तु इन योजनाओं की रचना करते और उनपर आचरण करते हुए लोकतन्त्र तथा विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों का ध्यान रखा जायगा।

किसानों का ऋण और ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था—खेती की पैदावार का मूल्य ऊँचा हो जाने पर भी अधिकतर ग्रामीण जनता का ऋण का बोझ घटा नहीं है। किसानों का और बे-जमीन के मजदूरों का ऋण, उनकी अदा करने की सामर्थ्य और ऋण के औचित्य के अनुसार अनिवार्य रूप से कम कर दिया जाना चाहिए। ऊँचे मूल्यों का लाभ केवल फालतू उत्पादन करनेवालों को हुआ है। और वे ग्रामीण जनता का बहुत छोटा भाग हैं। ग्रामीण जनता में अधिकतर लोग अपनी आवश्यकता से भी कम उत्पादन करनेवाले और बे-जमीन मजदूर हैं। इसलिए बाजार दर ऊँचे जाने का उनपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। सब महाजनों को रजिस्टर करके उनके लेन-देन का नियन्त्रण होना चाहिए। इसके साथ ही उचित दर पर ऋण मिल सकने की अन्य व्यवस्था होनी चाहिए। यह काम प्रादेशिक लैण्ड मौर्टगेज बैंकों (जमीन रहन रखकर ऋण देनेवाले बैंकों) और विविध काम करनेवाली सहकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थाओं द्वारा होना उचित है। जहांतक सम्भव हो वहांतक ऋण नियंत्रित विशेष प्रयोजन के लिए और माल के रूप में देना चाहिए।

ऋण देने वाली संस्थाओं की उन्नति में बड़ी बाधा यह है कि ऐसे किसानों की संख्या बहुत बड़ी है जिनकी साख कुछ नहीं है, और केवल साख वाले किसानों को ऋण देने की योजना से समस्या का स्पर्शमात्र होता है। इसलिए किसानों को ऋण देने की आदर्श व्यवस्था में यह ध्यान रखना आवश्यक होगा कि साख का अभाव खेती की आवश्यकताएं पूरी करने में बाधक न बने। जबतक ऊपर वर्णित नीति के अनुसार गांव का जीवन सर्वथा बदल न जाय तबतक इस बात का ध्यान में रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण रहेगा। ग्राम के व्यापार और अर्थ-व्यवस्था की कोई भी नई योजना बनाते हुए यह ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक होगा कि बाजार नियंत्रित रहें और खेती की फालतू पैदावार मल्टी-पर्पस (विविध काम करनेवाली) सहकारी संस्थाओं की मार्फत बेची जाय और लाइसेंस-प्राप्त मालगोदाम रहें।

खेत-मजदूर—गत कुछ वर्षों में यद्यपि खेत-मजदूरों की मजदूरी रुपये-आने-पाइयों में ऊँची हो गई परन्तु उनके जीवन-निर्वाह की दृष्टि से उनकी मजदूरी अब भी अपर्याप्त है। हमारे देश में अब भी ऐसे अनेक स्थान हैं जहां खेत-मजदूर मनुष्यों से हीन स्तर का जीवन बिताते हैं। उन्हें खेती के गुलामों की अवस्था में जीवन बिताना पड़ता है। इस बहुसंख्यक जनता की दासता को समाप्त करने और उसे न्यूनतम जीवन-मान प्राप्त कराने के लिए तुरन्त यत्न किया जाना चाहिए। खेत-मजदूर की सबसे बड़ी समस्या बेरोजगारी और कम रोजगार है। इसलिए इन लोगों की बड़ी संख्या को तुरन्त ही सामूहिक खेतियों और खेती-संबंधी अन्य उद्योगों में लगा देना चाहिए। इनको फिर बसाने की कोई भी योजना विकेन्द्रीकृत अर्थ-व्यवस्था में ही पूर्ण हो सकती है।

हमारे विशाल क्षेत्र में बिखरे हुए खेत-मजदूरों को संगठित करने का यत्न होना चाहिए जिससे कि उनका दोहन और दुरुपयोग बन्द हो जाय। जब ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का नियन्त्रण ग्रामीण जनता के हाथ में चला जायगा तब इस प्रकार का दोहन बहुत कम और अपवाद रूप में रह जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेती की पैदावार के मूल्य--ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को स्थिर करने के लिए फसलों और पशुओं का बीमा करने की कोई योजना होनी चाहिए। इसके साथ ही खेती और कारखानों के मालों के मूल्यों में संतुलन रखने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। आज तो खेती और गांव की पैदावार की कीमतें नियत करते हुए बहुत कुछ मनमानी से काम लिया जाता है। इस व्यवस्था में शहर गांव को दो प्रकार से लूटते हैं : खेती की पैदावार का मूल्य शहर का खरीदार निश्चित करता है और कारखानों का जो तैयार माल गांव में जाकर बिकता है, उसका मूल्य शहर का दुकानदार निश्चित करता है। यदि किसानों का जीवन उचित स्तर पर लाना हो और खेत-मजदूरों का जीवन न्यूनतम उचित स्तर पर रखना हो तो कीमतें तय करने में होनेवाले इस अन्याय की तुरन्त समाप्ति की जानी चाहिए। जबतक ऐसा न किया जायगा तबतक गांव के वास्तविक रोग का अर्थात् धन और बुद्धि के गांव से शहर की ओर प्रवाह का अन्त नहीं होगा।

उद्योग-व्यवसाय

हमारी अर्थ-व्यवस्था के उद्योग और व्यवसाय के क्षेत्र में मार्ग-दर्शक सिद्धांत यह होना चाहिए कि जिस किसी वस्तु का उत्पादन विकेन्द्रीकृत उद्योग द्वारा किया जा सके, उसे केन्द्रीकृत उद्योग द्वारा उत्पन्न न किया जाय।

औद्योगिक उत्पादन का संगठन ऊपर बतलाये गये उत्पादन संबंधी सिद्धांत के अनुसार ही होना चाहिए। अन्ततोगत्वा उपभोक्ताओं की आवश्यकता के सब समान विकेन्द्रीकृत उद्योगों द्वारा ही तैयार किये जायंगे और केन्द्रीकृत उत्पादन और नियंत्रण सामरिक उद्योगों, पावर के उत्पादन, खानों, धातुओं के उद्योगों, जंगलों, भारी यंत्रों व इंजीनियरिंग के कारखानों, औजारों और रासायनिक सामानों आदि तक ही सीमित रहेगा। अब दैनिक आवश्यकता के जो सामान केन्द्रीकृत उद्योगों द्वारा उत्पन्न किये जा रहे हैं, उनको विकेन्द्रीकृत उद्योगों द्वारा तैयार करने के लिए निरन्तर अनुसंधान करते रहना चाहिए। केन्द्रीभूत उद्योगों का नया संगठन करना चाहिए, क्योंकि हमारा जीवन और समाज जब छोटी ग्रामीण इकाइयों में विभक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जायगा तब भी हमें केन्द्रीकृत उद्योगों की आवश्यकता तो रहेगी ही। बड़े कारखानों को इस प्रकार योजनापूर्वक ग्रामों में स्थापित कर देने से देश का विकास अधिक समानता के आधार पर हो सकेगा।

खाद्य और अन्य मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाले उद्योगों को विकेन्द्रित कर देना चाहिए और इन वस्तुओं में केन्द्रीकृत उद्योगों द्वारा प्रतिस्पर्धा का तो तुरन्त अन्त कर देना चाहिए। यह ध्यान विशेष रूप से रखना चाहिए कि खेती की पैदावार को तैयार करते हुए उसका पौष्टिक तत्त्व नष्ट न हो जाय। चावल, वनस्पति और चीनी की मिलों में जो तरीके बरते जाते हैं, उनपर यह बात विशेष रूप से लागू होती है।

केन्द्रीभूत उद्योगों को विकेन्द्रीकृत उद्योगों का सहायक मान कर ही चलाना चाहिए, जिससे कि विकेन्द्रीकृत उद्योगों की उत्पादन-शक्ति बढ़ जाय और उनको औजार तथा कच्चा माल इत्यादि मिलते रहें। केन्द्रीभूत उद्योगों पर स्वामित्व समाज का होना चाहिए और उनका संचालन यथा-संभव स्वतंत्र कॉरपोरेशनों अथवा सहकारी संस्थाओं द्वारा किया जाना चाहिए। केन्द्रीभूत उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो जाना चाहिए और उनके मुआवजे का निश्चय अधिकतम आय के लिए जो सिद्धांत निर्धारित कर दिए गए हैं, उनके अनुसार करना चाहिए। यह मुआवजा देने का लक्ष्य उन लोगों का पुनर्वास होना चाहिए जिससे कि उनकी संपत्ति ली जा रही है। जबतक इन उद्योगों का राष्ट्रीयकरण न हो तबतक उनका नियंत्रण समाज के और प्राप्तव्य आदर्श के लाभ की दृष्टि से किया जाना चाहिए। केन्द्रीभूत और विकेन्द्रीभूत उद्योगों में आजकल जो विनाशक प्रतिस्पर्द्धा चलती है, उसका तुरन्त अन्त कर देना चाहिए। इस प्रयोजन से उत्पादन के कुछ क्षेत्र ग्रामीण उद्योगों के लिए सुरक्षित करके उनकी सहायता प्रतिस्पर्धा करने वाले केन्द्रीभूत उद्योगों पर टैक्स लगाकर करनी चाहिए। केन्द्रीभूत उद्योगों के जो पुरजे आदि घिस जायं, उनको फिर बदलना नहीं चाहिए और न नये यन्त्र लगाने देने चाहिए। इस प्रकार कुछ समय पश्चात् केन्द्रीभूत कारखाने अपने आप समाप्त हो जायंगे और उनका स्थान विकेन्द्रीकृत उद्योग ले लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौलिक (बुनियादी) उद्योगों की संगठन-संबंधी और टैक्निकल कुशलता उनकी व्यवस्था को सुधार कर और उनका संचालन बुद्धिपूर्वक करके बढ़ानी चाहिए और उनका नियंत्रण प्लैनिंग कमीशन के मातहत एक पृथक कौंसिल के हाथ में सौंप देना चाहिए। अवसे पौंड-पावने (स्टर्लिंग बैलेंस) का उपयोग मुख्यतया केन्द्रीभूत उद्योगों को इस प्रकार बुद्धिपूर्वक और अधिक व्यवस्थापूर्वक चलने के लिए यन्त्रादि मँगाने में करना चाहिए। हमारे नियंत्रित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में यदि कुछ विदेशी मुद्रा बचे तो उसका प्रथम उपयोग इस प्रयोजन के लिए यन्त्रादि मँगाने में करना चाहिए। इस प्रकार विदेशी मुद्रा के उपयोग की प्राथमिकता का निश्चय प्लैनिंग कमीशन को करना चाहिए, जो कि कृषि विकेन्द्रीकृत उद्योगों और केन्द्रीभूत उद्योगों का प्रतिनिधि होना चाहिए।

विदेशी कार-बार—हमने जो अर्थ-व्यवस्था निर्धारित की है उसमें विदेशी कार-बारों के लिए कोई स्थान नहीं—वे चाहे केन्द्रीभूत कारखानों में उपभोक्ताओं के पदार्थ तैयार करते हों और चाहे आधारभूत उद्योगों का सामान बनाते हों। जिस प्रकार उपभोक्ताओं की आवश्यकताएँ पूर्ण करनेवाले केन्द्रीभूत देशी कारखाने टैक्स लगाने, सरकारी सहायता देने और उत्पादन को नियंत्रित करने की योजनाओं के अनुसार क्रमशः समाप्त हो जायंगे और मौलिक उद्योगों के कारखाने राष्ट्र की संपत्ति बन जायंगे, उसी प्रकार विदेशी कार-बार भी या तो समाप्त हो जायंगे और या उनका फिर राष्ट्रीयकरण हो जायगा। इस मामले में विदेशी कारबारियों के पक्ष या विपक्ष में कोई भेद नहीं करना चाहिए।

आर्थिक सिविल सर्विस—राष्ट्रीयकृत उद्योगों का भलीभांति विकास करने के लिए उपयुक्त शासन-संगठनों की स्थापना करनी चाहिए। निम्न मामलों पर तुरन्त ही विशेष ध्यान देना चाहिए।

१. आर्थिक सिविल सर्विस की स्थापना जो कि उद्योगों के लिए विविध ग्रेडों के कार्यपालक (एक्जेक्यूटिव) कर्मचारी मुहैया करेगी। वर्तमान केन्द्रीभूत उद्योगों के मालिकों के अनुभव और व्यवस्था-संबंधी योग्यता का, उन्हें प्रस्तावित आर्थिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिविल सर्विस में खपा कर, इस काम के लिए उपयोग किया जा सकता है।

२. आवश्यक औद्योगिक अधिकारियों का प्रशिक्षण।
३. कार्यकर्त्ताओं का टैक्निकल प्रशिक्षण और साधारण शिक्षण।
४. दुर्लभ और सामरिक आवश्यकताओं के साधनों का नियंत्रण।
५. आर्थिक साधनों का विस्तृत व सूक्ष्म सर्वे (अध्ययन और निरीक्षण)।

औद्योगिक अनुसंधान—मौलिक (बुनियादी) उद्योगों में संगठन कुशलता और टैक्निकल साधनों की उन्नति सुनिर्दिष्ट औद्योगिक अनुसंधान पर ही निर्भर करती है। अबतक अनुसंधान का लक्ष्य केन्द्रीभूत उद्योगों का नफा बढ़ाना ही रहा है। अब इस अनुसंधान के कार्य का संचालन इस प्रकार होना चाहिए कि केन्द्रीकृत उद्योग विकेन्द्रीकृत उद्योगों की संगठन-कुशलता और उत्पादन-कुशलता की वृद्धि में सहायक हों और वे समाज की सेवा का साधन बन जायं। अनुसन्धान का लक्ष्य यह भी होना चाहिए कि केन्द्रीकृत उद्योगों का संगठन उन्हें छोटी इकाइयों में बांट कर और उनका ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार विस्तार करके किया जा सके कि छोटे पैमाने के उद्योग-धन्धे इन केन्द्रीकृत उद्योगों के सहायक बन जायं।

विकेन्द्रीकृत ग्रामीण उद्योग—इन उद्योगों का लक्ष्य प्रादेशिक स्वावलम्बन होना चाहिए। इन्हें सब लोगों को विविध रोजगारों में लगाने में और अपने प्रदेश के प्राकृतिक साधनों का उपयोग करने में समर्थ होना चाहिए।

इन उद्योगों की उन्नति औद्योगिक सहकारी संस्थाओं द्वारा इस प्रकार की जानी चाहिए कि स्थानीय लोग ही उनके लिए कच्चा माल मुहैया करें और वे अपने सदस्यों को माल के उत्पादन और विक्रय में मार्ग-प्रदर्शन करती रहें। यदि संभव हो तो उनके लिए सम्मिलित कारखाने और उत्पादन की सुविधाएं दी जायं। स्थायी प्लैनिंग कमीशन के आधीन एक पृथक कौंसिल इन उद्योगों के मार्ग-प्रदर्शन और संगठन के लिए होनी चाहिए। इस सारे कार्य का लक्ष्य, एक ऐसे संघीय संगठन का निर्माण है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसकी इकाइयां प्रारम्भिक पंचायतें, प्रादेशिक यूनियनें और एसोसिएशन आदि होंगे।

इन उद्योगों को कुशलता, जहां बिजली मिल सके वहां सब कारीगरों को बिजली देकर और ऐसे यांत्रिक साधनों का उपयोग करके जिनसे कि सबको रोजगार मिलने में बाधा न हो, बढ़ाई जा सकती है।

यदि कारीगर और श्रमिक कच्चा माल प्राप्त करने और तैयार माल बेचने की परेशानियों से आजाद रहेंगे तो वे अपना सारा ध्यान उत्पादन पर लगा सकेंगे।

जिन अनेक उद्योगों को शुरू-शुरू में ऋण अथवा सहायता की आवश्यकता होगी, उनके लिए इनकी व्यवस्था प्लैनिंग कमीशन के मातहत लैण्ड-कौंसिलें और विकेन्द्रीकृत उद्योगों की कौंसिल, औद्योगिक सहकारी संस्थाओं द्वारा करेंगी।

विकेन्द्रीकृत उद्योगों की उन्नति के लिए निम्न उपायों का तुरन्त ही अवलम्बन किया जा सकता है :

सरकार और सार्वजनिक संस्थाएँ यथाशक्ति ग्रामीण उद्योगों के माल का ही उपयोग करें। गृह और ग्रामीण उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल, औजारों और उनके तैयार माल को ऑक्ट्रोय, टर्मिनल टैक्स (चुंगी), बिक्री टैक्स और अन्य इसी प्रकार की देनदारियों से मुक्त रखा जाय। इन उद्योगों को जंगल की पैदावार स्टैण्डर्ड दरों पर मुहैया करने में पहल दी जाय। सरकार जंगलों के माल पर टैक्स लगाने में मुख्य ध्यान अब-तक अपनी आमदनी का रखती है। उसे चाहिए कि वह उस नीति को बदलकर लोगों की आवश्यकता के माल तैयार कराना अपना लक्ष्य रखे। ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि इन उद्योगों को लोहे, कोयले, कास्टिक सोडा, और अन्य कैमिकलों आदि जिन सामानों की कमी रहती हो वे इन्हें औरों से पहले दिये जायं। जब प्लैनिंग कमीशन विकेन्द्रीकृत उद्योगों की कौंसिल के साथ मिलकर अपना काम पूरी तरह करने लगेगा तब इस प्रकार की पहल का निश्चय करना सरल हो जायगा। इन उद्योगों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास ठीक प्रकार के नेताओं के मिलने पर वहुत निर्भर करता है। इस-लिए संगठन-कर्त्ताओं, टैक्निशियनों और व्यवस्थापकों का एक वर्ग उचित शिक्षण द्वारा तैयार किया जाना चाहिए। रूरल इकौनौमिक सिविल सर्विस को ऐसे स्त्री और पुरुष तैयार करने चाहिए जो विकेन्द्रीकृत उद्योगों की सेवा भली-भांति कर सकें।

उद्योगों में मालिक-मजदूर संबंध—जव हमारी औद्योगिक व्यवस्था का आधार विकेन्द्रीकृत और राष्ट्रीय मिलकियत के केन्द्रीकृत कारखाने हो जायंगे तव मालिकों और मजदूरों के संवंधों की समस्या आप-से-आप वहुत सरल हो जायगी। विकेन्द्रीकृत कारखानों में भाड़े या मजदूरी पर रखे हुए मजदूर वहुत कम होंगे। और चूंकि वे मजदूर नजदीकी सामाजिक सम्वन्धों के वातावरण में काम करेंगे इसलिए मजदूरों के दोहन का अवसर ही कठिनाई से कोई आयगा।

सार्वजनिक स्वामित्त्व में संचालित केन्द्रीकृत उद्योगों में कार्यकर्त्ताओं को सरकारी नौकरी की सब सुविधाओं और अधिकारों की सहूलियत उपलव्ध रहेंगी। इन उद्योगों के प्रवन्ध में भी उनका हाथ रहेगा।

परिवर्तन-काल में श्रमिकों को लाभ में भाग देकर और प्रवन्ध में उनका प्रतिनिधित्व रखकर श्रम और पूंजी में मित्रतापूर्ण संवंधों को वढ़ाना चाहिए। प्रत्येक उद्योग की प्रतिदिन की व्यवस्था-समस्याओं को हल करने के लिए वर्क्स कमेटियों को और मजदूरी का तथा काम की अवस्थाओं का निश्चय करने के लिए प्रादेशिक श्रमिक वोर्डों को संगठित करते हुए, उनमें श्रमिकों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को उचित अनुपात में सम्मिलित करने का ध्यान रखा जाना चाहिए। उत्पादन में निरन्तरता रखने और विघ्न न पड़ने देने के लिए आवश्यक है कि मालिकों और मजदूरों के सव झगड़े आपसी समझौते, पंच-फैसले और मध्यस्थता द्वारा हल किये जायं। कार्यकर्त्ताओं को न्यूनतम वेतन, उचित मकान और वुढ़ापे, वीमारी और वेरोजगारी के कारण होने वाली आर्थिक कठिनाइयों से रक्षा की गारण्टी दी जानी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैंक, बीमा और मुद्रा

साधारण अर्थों में आर्थिक योजना का विचार आरम्भ करते ही बड़े पैमाने पर पूंजी के संग्रह और विनियोग का प्रश्न सामने आ खड़ा होता है। परन्तु हम जिन विकेन्द्रित ग्रामीण उद्योगों की योजना पेश कर रहे हैं, उनमें समस्या पूंजी की अपेक्षा श्रमिकों की अधिक है। तथापि इतने बड़े क्षेत्र में कार्य करने पर पूंजी का विनियोग तो होगा ही। परन्तु वह होगा बहुत फैलकर और क्योंकि हमारी योजना के अनुसार जो केन्द्रीभूत उद्योग उपभोक्ताओं के सामान तैयार करते हैं, उनमें घिसे हुए पुरजों आदि को बदलने की इजाजत नहीं दी जायगी। इसलिए अभी इन उद्योगों में जो पूंजी लग रही है, वह विकेन्द्रीकृत उद्योगों के लिए सामान मुहैया करने के लिए मिल सकेगी। पूंजी की बचत इस प्रकार भी होगी कि व्यापार को यथाशक्ति स्वावलम्बी प्रदेशों में सीमित और संगठित कर दिया जायगा और उनमें भी लेन-देन अधिकतर विविध काम करनेवाली सहकारी संस्थाओं द्वारा अदले-बदले के आधार पर होगा।

इसके विपरीत खेती और आधारभूत उद्योगों के लिए पूंजी की बड़े परिमाण में आवश्यकता होगी, क्योंकि हमारी अर्थ-व्यवस्था के अनुसार रहन-सहन का स्तर ऊँचा करने के लिए उनकी टैक्निकल कुशलता को बढ़ाना आवश्यक होगा। कृषि की उन्नति करने के लिए फसलों और पशुओं का बीमा संगठित करना होगा। बीमे के प्रीमियम नकदी के स्थान पर माल के रूप में वसूल किये जायंगे।

तात्कालिक कार्यक्रम यह होना चाहिए कि सामूहिक परिमाण पर बचत की जाय और पूंजी के विनियोग पर कृषि और विकेन्द्रीकृत उद्योगों के लाभ की दृष्टि से नियंत्रण किया जाय और अन्ततोगत्वा बैंकों और बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय, जिससे कि राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था की बड़े-बड़े पूंजीपतियों के दोषपूर्ण जोड़-तोड़ों से रक्षा हो सके। रूरल फाइनेंस बोर्ड (ग्रामीण आर्थिक बोर्ड) के आधीन विविध कार्य करनेवाली सहकारी संस्थाओं का देशव्यापी जाल होना चाहिए जिसकी पहुँच समाज के निम्नतम् स्तर तक हो। इन संस्थाओं को गरीब-से-गरीब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमियों की बचत का भी उपयोग करने में समर्थ होना चाहिए। पूंजी-विनियोग और उत्पादन की समस्याएं एकमात्र इस प्रकार के संगठन से ही हल हो सकती हैं। सामूहिक रूप में बचत का आरम्भ, पूंजी के संग्रह और विनियोग का प्रादेशिक आधार पर संगठन करके करना चाहिए। शहरी इलाकों की बचत का विनियोग सरकारी ऋणों में करना चाहिए और उन ऋणों का इण्डस्ट्रियल फाइनैन्स कोर्पोरेशन की मार्फत सार्वजनिक स्वामित्व के केन्द्रीभूत उद्योगों में लगाना चाहिए।

हमारा उद्देश्य यह है कि अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक विभाग में मुद्रा का उपयोग यथाशक्ति कम कर दिया जाय। इस समय आर्थिक विषमता का प्रधान कारण 'मुद्रा का आवरण' (लेन-देन का नकदी आधार) ही है। स्वावलम्बी विकेन्द्रित आर्थिक जीवन में आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन बहुत घट जायगा। और जो होगा, वह भी अधिकतर अदले-बदले के द्वारा होगा। मजदूरियां और टैक्स भी यथाशक्ति माल के रूप में ही दिए जायंगे। कृषि तथा उद्योगों के लिए ऋण विशेष प्रयोजनों से ही दिया जायगा। फलतः नकदी का उपयोग न्यूनतम हो जायगा। जब खलिहानों का और नमक, सूत तथा लोहे के स्थानीय गोदामों सरीखी विकेन्द्रित संस्थाओं का विकास हो जायगा और रूरल क्रैडिट बोर्ड तथा इन्डस्ट्रियल फाइनैन्स कार्पोरेशन क्रमशः कृषि तथा विकेन्द्रीकृत सार्वजनिक स्वामित्व के केन्द्रीभूत उद्योगों में योजनापूर्वक पूंजी और बचत का उपयोग करने लगेंगे और मुद्रा तथा ऋण का उचित नियंत्रण सेंट्रल बैंक करने लगेगा तब बाजार में न कभी तेजी आयगी, न कभी मन्दी, और तब मुद्रा का विस्तार माल के विस्तार के अनुसार ही होने लग जायगा।

वितरण

घरेलू लेन-देन—ज्यों-ज्यों प्रादेशिक स्वावलम्बिता का विकास होता जायगा यों-त्यों अन्तः प्रादेशिक व्यापार की आवश्यकता आप-से-आप घटती जायगी। परन्तु प्रादेशिक इकाइयों की स्वावलम्बिता स्वभावतः विविध वस्तुओं के अनुसार विविध होगी। किसी वस्तु के लिए इकाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राम अथवा तालुका होगा और किसीके लिए कुछ ग्रामों का समूह। प्रादेशिक आर्थिक इकाई अपनी विविध काम करनेवाली सहकारी संस्थाओं के द्वारा केवल उन वस्तुओं को बाहर भेजेगी जो उसके पास फालतू होंगी अथवा जिनको वह अपेक्षाकृत सस्ता तैयार कर सकेगी। इसी प्रकार जिन वस्तुओं को वह अपेक्षाकृत सस्ता तैयार नहीं कर सकेगी, और जो उसके जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक होंगी उनको वह अपनी विविध काम करनेवाली सहकारी संस्था के द्वारा बाहर से मँगावेगी। शहरी इलाकों से ग्रामीण इलाकों को जो वस्तुएँ जायं उनका नियंत्रण विविध काम करने वाली सहकारी संस्थाओं के मार्फत ही होना चाहिए। सरकारी और गैर-सरकारी आधार पर, जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं में प्रादेशिक इकाइयों को स्वावलम्बी बनाने की संभावना के अनुसन्धान का कार्य तुरन्त ही हाथ में लिया जाना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार—जिन वस्तुओं के बिना राष्ट्र का काम चल सके उनका आयात बिल्कुल नहीं करना चाहिए। देश का वैदेशिक व्यापार प्लैनिंग कमीशन के अधीन एक पब्लिक कार्पोरेशन के सुपुर्द कर देना चाहिए। जहांतक हो सके वहांतक आयात की हुई वस्तुओं का वितरण सहकारी संस्थाओं की मार्फत करना चाहिए। जिन कच्चे मालों और सामरिक उपयोगिता की वस्तुओं का उपयोग देश में हो सके उनका निर्यात नहीं करना चाहिए। यदि प्लैनिंग कमीशन सिफारिश करे तो विदेशी पूंजी को सरकारी ऋण के रूप में आने दिया जा सकता है। परन्तु वह ऋण भी संसार के बैंक से ही लेना चाहिए। व्यापार के संबंध उन्हीं विदेशों के साथ बढ़ाने चाहिए, जो कि हमारी अर्थ-व्यवस्था के सहायक हों। समृद्धि एक अविभाज्य वस्तु है और इसलिए हमारा विश्वास है कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से संसार के विविध देशों के विकास में भी सहायता मिलेगी।

परिवहन और सन्देश-संचार

व्यापारिक और आर्थिक कारणों से सड़कों और रेलों का विस्तार अत्यधिक बढ़ गया है। अहिंसामय विकेन्द्रीकृत समाज में मार्ग-निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की योजना का आधार सर्वथा विभिन्न होगा। रेलों, सड़कों, आन्तरिक जल-मार्गों, तटवर्ती जहाज-मार्गों, डाक और तार और हवाई यातायात सरीखे सार्वजनिक साधनों का संगठन इस प्रकार होना चाहिए कि मुख्य दृष्टि ग्राम पर रहे। विकेन्द्रीकृत अर्थ-व्यवस्था में माल ढोने के साधनों (परिवहन) पर, विशेषतः रेलों और पक्की सड़कों पर, बोझ बहुत कम पड़ेगा। मानव और पशु-शक्ति का पूरा-पूरा काम देने के लिए देहातों में माल ढोने का मुख्य साधन बैलगाड़ी को ही रखना चाहिए। इस समय पक्की ट्रंक सड़कों की नितान्त आवश्यकता नहीं है। परन्तु गांवों तक पहुँचने वाली सड़कों और आन्तरिक जल-मार्गों के निर्माण पर बल दिया जाना चाहिए। आन्तरिक जल-मार्गों से तीन लाभ होते हैं। उनसे मल्लाहों, को रोजगार मिलता है, वे माल ढोने के लिए सस्ते पड़ते हैं और उनसे खेतों की सिंचाई भी होती है।

प्रादेशिक स्वावलम्बन का अर्थ सब तरफ से संबंधों का तोड़ लेना नहीं है। इसलिए जहांतक हो सके, वहांतक देहातों में डाक, तार और टेलीफोन की सहूलियतों का विस्तार करना चाहिए।

अबतक रेलों के दर इस प्रकार निर्धारित किये जाते रहे हैं कि उनसे विकेन्द्रीकृत ग्रामीण उद्योगों को बहुत ही हानि हुई है। इसलिए तुरन्त ही स्वावलम्बिता को लक्ष्य में रखकर काम करना चाहिए। रेल, डाक, तार, जहाज और वायुयान आदि सार्वजनिक उपयोग के साधनों का स्वामित्व यथाशक्ति जनता के हाथ में होना और उनका प्रबन्ध प्रादेशिक संस्थाओं की मार्फत केन्द्र के हाथ में रहना चाहिए।

स्वास्थ्य और सफाई

यह मानना पड़ेगा कि स्वास्थ्य की समस्या डिस्पैंसरियों और हस्पतालों का जाल फैलाकर हल नहीं की जा सकती। ये वस्तुएं राष्ट्रीय आय पर भारी बोझ होती हैं और पेशेवर डाक्टरों ने इनको सेवा की संस्थाओं के स्थान पर आमदनी और व्यापार का केन्द्र बना लिया है। हमारे समाज के वर्तमान संगठन में तो हमारी स्वास्थ्य-सेवाओं पर अधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही अपने स्वार्थ के लिए दूसरों से लाभ उठानेवाले व्यक्तियों का हो गया है।

पहली बात यह है कि लोगों को अपना स्वास्थ्य आप ठीक रखने और बीमार न होने की शिक्षा देनी चाहिए। उन्हें स्वास्थ्य के संबंध में निम्न मौलिक सिद्धांतों का शिक्षण देना चाहिए :

सफाई—सफाई में अपने शरीर और अपने अड़ोस-पड़ोस के स्थान की भी सफाई शामिल है। उसमें घर के गन्दे पानी और कूड़े-करकट को ठिकाने लगाने की बात विशेष रूप से शामिल है। इस कूड़े-करकट से, मलमूत्र से और गांव के गोबर आदि से कम्पोस्ट का बनाना भी इसीमें शामिल है। यदि गांवों में पशु बांधने के स्थानों की व्यवस्था भली-भांति करली जाय तो यह कार्य सरल हो जायगा।

भोजन-शास्त्र—इस समय हमारे देश की जनता के भोजन का प्रधान भाग अनाज है। स्वास्थ्य और शक्ति को भली-भांति सुरक्षित रखने के लिए भोजन का उचित रूप से सन्तुलित होना आवश्यक है। इस प्रयोजन की सिद्धि लोगों में सन्तुलित भोजन की आदत डालकर ही की जा सकती है। लोगों को यह सिखाने की आवश्यकता है कि खाद्य-वस्तुओं का पौष्टिक तत्त्व नष्ट किये बिना भोजन किस प्रकार पकाना और तैयार करना चाहिए। औषधियों की आवश्यकता साधारणतया शरीर की न्यूनताओं को पूरा करने के लिए ही हुआ करती है। भोजन-शास्त्र की दृष्टि से ठीक-ठीक भोजन करने पर हम रोगों का निरोध और इलाज स्वयं कर सकेंगे। गांवों के लोगों को आजकल बहुधा रोग गलत अथवा निरन्तर एक-सा भोजन करने के कारण होते हैं। शरीर को निर्बल करनेवाले मलेरिया सरीखे रोगों का प्रतिरोध भली-भांति हो सकता है यदि लोग ऐसे सन्तुलित भोजन करने का अभ्यास करलें जिन्हें वे उपलब्ध साधनों द्वारा ही अपने घरों में तैयार कर सकते हैं।

काम-वासना का दमन—भारत की ग्रामीण जनता की एक समस्या यह है कि उसे पौष्टिक भोजन नहीं मिलता और उसकी सृजन करने की शक्तियां दबी रहती हैं। इसका एक परिणाम काम-वासना का बढ़ जाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर जन-संख्या में योजनाहीन वृद्धि और दुर्बल सन्तान की उत्पत्ति के रूप में प्रकट होता है। इससे माता-पिता की जीवन-शक्ति का भी ह्रास होता है। इन परिस्थितियों के कारण ही हमारे यहां बाल-मृत्यु का अनुपात बहुत बढ़ गया है।

इस समस्या का हल यही है कि ग्रामीण-जीवन ऐसा बनाया जाय जिसमें कि खुली हवा में काम करने, सन्तुलित भोजन और लाभकारी सांस्कृतिक मनोरंजन के द्वारा मनुष्य की उत्पादक शक्तियों के उपयोग का भली-भांति अवसर मिल सके। ऐसा हो जाने पर लोगों की उत्पादक शक्तियों का सदुपयोग होने लगेगा। स्त्री-पुरुषों को इन्द्रिय-दमन और आत्म-संयम का भी अभ्यास कराना चाहिए और उन्हें यह समझाना चाहिए कि असंयत मेल-जोल के क्या दुष्परिणाम होते हैं।

काम का और फुर्सत का समय और मानसिक सन्तुलन—आदर्श परिस्थिति तो वह है जिसमें कि काम और फुर्सत का एकत्र मेल हो जाय और दोनों को एक-दूसरे से पृथक करने के स्थान पर दोनों के लिए समय नियत कर दिया जाय। इस प्रकार काम और फुर्सत का मेल कर देने से समाज का मानसिक सुख और स्वास्थ्य समुन्नत हो जाता है।

बालकों को इस प्रकार का शिक्षण स्कूल में दिया जा सकता है, परन्तु इसकी आवश्यकता बालकों की अपेक्षा प्रौढ़ों को अधिक है। उन्हें इसका शिक्षण प्रौढ़ शिक्षण का कार्यक्रम बनाकर ही दिया जा सकता है।

प्रत्येक सामाजिक दोष को दूर करने का भार स्कूलों और हस्पतालों पर डाल देने से इस उद्देश्य की सिद्धि नहीं होगी। सैकड़ों छोटी-छोटी बीमारियां ऐसी हैं जिनके लिए किसीको हस्पताल या डिस्पैन्सरी में जाने की आवश्यकता नहीं। अपना घर और परिवार ही ऐसे स्थान हैं जहां कि जीवन की सब समस्याओं को सदा हल किया जा सकता है।

हस्पतालों, डिस्पेन्सरियों और मातृ-कल्याण-केन्द्रों की सेवाएं ऐसी और इतनी पर्याप्त होनी चाहिए कि उनका लाभ सब लोग उठा सकें। प्रकृति हमारी सबसे बड़ी सहायक है। उससे हम जो लाभ उठा सकते हैं उनकी खोज करनी चाहिए। उनका उपयोग करते हुए उसमें सहायता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सकों, वनस्पतियों और इस युग के साधारण चिकित्सा-यन्त्रों से ली जा सकती है ।

शुद्ध पानी का ग्रामों में भयंकर अभाव है। इसकी न्यूनता तुरन्त दूर करने की आवश्यकता भली-भांति अनुभव नहीं की गई। गांवों को कुओं और सुरक्षित तालाबों के रूप में पानी इस प्रकार दिया जाना चाहिए कि उसको आदमी और पशु मलिन न कर सकें।

शिक्षण

अहिंसामय सहकारी समाज की शिक्षण-पद्धति स्वभावतः उस समाज की शिक्षण-पद्धति से भिन्न होगी जिसके संगठन का आधार ही प्रतिस्पर्धा हो और जिसमें व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह में अपनेको औरों से ऊँचा करने और दूसरों पर हकूमत गाजने के लिए संघर्ष करने की भावना हो। अहिंसामय समाज की शिक्षण-पद्धति का लक्ष्य मनुष्य की निरीक्षक, आलोचक और सृजनात्मक योग्यताओं का विकास करके मनुष्य में सृजन, निर्माण और सेवा की भावना को बढ़ाना है।

शिक्षण का लक्ष्य जीवन-संघर्ष की तैयारी के स्थान पर सेवा के लिए तैयारी होना चाहिए। ऐसा शिक्षण न केवल जीवन की पूर्णता को अपना लक्ष्य मानेगा, अपितु यह भी ध्यान रखेगा कि जो शिक्षण दिया जाय वह रचनात्मक प्रवृत्तियों द्वारा दिया जाय, क्योंकि हमारा जीवन दस में से नौ भाग रचनात्मक प्रवृत्तियों से ही वनता है।

स्थायी सभ्य जीवन में प्रथम चिन्ता खाद्य, वस्तु, आश्रय (मकान) और उत्पादन के औजारों की प्राप्ति की होती है। आज मानव का जितना भी ज्ञान है, उसका अधिकांश उसने अपने जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए संघर्ष करते हुए ही प्राप्त किया है। अतएव शिक्षण का विकास मानवीय विकास की प्रक्रियाओं के अनुसार ही होना चाहिए।

इस विचार के आधार पर ही शिक्षण की ऐसी पद्धति का विकास किया गया है जिसमें विविध विषयों को आवश्यक दस्तकारियों की सहायता से सिखलाया जाता है, और दस्तकारियों का भी चुनाव इस प्रकार किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है कि उन्हें सीखकर ग्रामवासी अपने जीवन को स्वावलम्बी बना सकें। इस नवीन शिक्षण-पद्धति में मानसिक शिक्षण का भाग न्यूनतम कर दिया जाता है। इसमें विद्यार्थी को ऐसी कोई बात नहीं सिखलाई जाती जो कि आधारभूत जीवन के साथ प्राकृतिक रूप से संबद्ध आवश्यकताओं से अपने-आप उद्भूत न होती हो।

इस प्रकार इस शिक्षण-पद्धति में एक ओर प्रकृति का अध्ययन और दूसरी ओर मानव-समाज का अध्ययन एक-दूसरे के साथ इस प्रकार गुथ जाते हैं कि इनसे जीवन को समझने में सहायता मिलती है। और मनुष्य केवल इस प्रकार अपने जीवन के उद्देश्य को ठीक-ठीक समझ सकता है।

बुनियादी तालीम सांस्कृतिक और दस्तकारी के शिक्षण का समन्वय है।

जिस समाज में युवकों को सदा एक-दूसरे का मुकाबला करने, लड़ने और एक-दूसरे को जीतने का शिक्षण दिया जाता हो उससे सदाचार का मूल्य सिखाने की बहुत आशा नहीं रखी जा सकती। शक्ति, अधिकार, हुकूमत और अपने बड़प्पन के लिए दिये हुए शिक्षण की, उस शिक्षण के साथ कोई संगति नहीं बैठ सकती, जो मन, हृदय और भावनाओं के विकास के लिए दिया जाने वाला हो।

संसार के महान् धर्मों की शिक्षाएँ इसी प्रकार की शिक्षण-पद्धति में सम्मिलित की जा सकती हैं जिनका लक्ष्य संतोष, स्वावलम्बन और सदाचार और सहकारिता हो। धर्मों और संस्कृतियों के अतिरिक्त, लोभ-लालच और स्वार्थमय संघर्षों ने मानव-समाज को हिंसात्मक जीवन का नियम मानना सिखला दिया है। अहिंसामय समाज इस प्रक्रिया को उलट देगा। वह सब धर्मों को समान रूप से सत्य और उन्नति तथा पूर्णता कराने में समर्थ मान कर चलेगा। नई शिक्षण-पद्धति का लक्ष्य ऐसी मानवता होगी, जिसका आधार अपरिग्रह, अहिंसा और सत्य होंगे।

प्रारम्भ में शिक्षण उस ही भाषा द्वारा दिया जायगा जिसे लोग बोलते हैं। इस बात की कोई परवाह नहीं की जायगी कि वे भाषाएं भली-भांति उन्नत हैं या नहीं। उच्च शिक्षण में देश की राष्ट्रीय भाषा का प्रयोग किया जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामूहिक कार्यों के लिए अनुशासन का अभ्यास बुनियादी तालीम का आवश्यक भाग होगा। परन्तु शिक्षण के क्षेत्र पर सैनिक शिक्षण को आक्रमण नहीं करने दिया जायगा।

व्यक्ति, राज्य और समाज

अहिंसामय समाज में माल के उत्पादन, शासन के नियन्त्रण और राजनीतिक अधिकार के मामलों में अधिकतम विकेन्द्रीकरण होना चाहिए।

आज समाज के अधिकारों के विकेन्द्रीकरण की प्रायः सर्वत्र चर्चा है। ऊपर पहुंचकर भीड़ से बचने के लिए और लोकतंत्र को प्रभावशाली बनाने के लिए ऐसा यत्न किया जा रहा है कि अधिकाधिक शक्ति शासन के ऊपर की इकाइयों से लेकर नीचे की इकाइयों के और गैर-सरकारी संगठनों के हाथ में सौंप दी जाय।

परन्तु शासन के अधिकार सौंपने के मामले में हमारी प्रवृत्ति ऊपर लिखे हुए विचार से मूलतः भिन्न है। वर्तमान व्यवस्था में शक्ति और अधिकार ऊपर से नीचे की ओर चलते हैं। इसके विपरीत हमारा विचार यह है कि अधिकारों का उद्भव शासन की आधारभूत इकाइयों में होकर उन्हें नीचे से ऊपर की ओर को बढ़ना चाहिए।

देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् जो वाद-विवाद और झगड़े खड़े हो गये हैं उन्हें हम भली-भांति जानते हैं। हम एक केन्द्रिक सरकार के नियन्त्रण में राष्ट्र की एकता और स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने की आवश्यकता अनुभव करते हैं; परन्तु साथ ही हम यह भी अनुभव करते हैं कि जो सरकार व्यक्तियों के विचार और बुद्धि को स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने का अवसर नहीं देती और जो साधारण जनों की सूझ-बूझ का उपयोग नहीं करती, उसका बल वह बल नहीं हो सकता जो कि उस शासन का होता है जिसे कि लाखों करोड़ों जनता का बुद्धिपूर्वक सहयोग और उसकी विविध संस्कृतियों तथा विकास की शक्तियों की सहायता का लाभ मिलता रहता है। इसलिए हमारा कथन यह है कि ग्राम-पंचायतों को शासन की प्रारम्भिक इकाइयां मानकर उनको शासन के पर्याप्त अधिकार देने चाहिए। अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तरों पर समाज का सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रादेशिक संगठन बनाए जाने चाहिए और चुनाव की तथा अधिकार देने की प्रणाली अप्रत्यक्ष होनी चाहिए। इस प्रकार उच्च स्तूप (पिरामिड) की आकृति का एक शासन संगठन बन जायगा, जिसमें शासन के अधिकतर अधिकार नींव में रहेंगे, और ज्यों-ज्यों हम ऊपर को चलते जायंगे, त्यों-त्यों अधिकार घटते जायंगे और चोटी पर जाकर वे न्यूनतम हो जायंगे।

नींव में ग्राम-पंचायतें होंगी, जिनका काम शिक्षण, स्वास्थ्य, सफाई, भूमि और विकेन्द्रीकृत उद्योगों की समस्याएँ हल करना होगा। इनके बाद ग्राम-पंचायतों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित प्रादेशिक पंचायतों की प्रादेशिक कौंसिलें होंगी। ये कौंसिलें एक प्रान्तिक-पंचायत-कौंसिल का निर्वाचन करेंगी। प्रान्तीय-पंचायत-कौंसिलें एक अखिल भारतीय पंचायत-कौन्सिल का निर्वाचन करेंगी। केवल ग्राम-पंचायतें वयस्क मात्र के मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होंगी।

नागरिक क्षेत्रों का संगठन भी इसी प्रकार किया जा सकता है। प्रांतीय और अखिल भारतीय-स्तर पर पार्लमेंटें होनी चाहिए जो कि क्रमशः प्रांतिक पंचायतों का और प्रांतीय नागरिक असेंबलियों का समन्वय करें।

भूमि और विकेन्द्रीकृत उद्योगों के सम्बन्ध में कानून प्रांतिक-पंचायत कौंसिल को बनाने चाहिए और इन्कमटैक्स आदि प्रांतीय पार्लमेंट को लगाने चाहिए। जहांतक हो वहांतक इन कानूनों का शासन प्रादेशिक संगठनों के हाथ में रहना चाहिए।

भूमि और विकेन्द्रीकृत कानूनों के समन्वय का काम अखिल-भारतीय-पंचायत-कौंसिल के सुपुर्द होगा और रक्षा, रेलवे, बिजली, तटवर्ती, जहाजरानी, हवाई यातायात, आधारभूत उद्योगों को चलाने और पब्लिक कारपोरेशनों का संचालन, वैदेशिक व्यापार और वैदेशिक संबंध आदि मामलों का शासन प्रांतीय पार्लमेंटों की प्रतिनिधि अखिल-भारतीय-पार्लमेंट के हाथ में रहेगा।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कृषि, विकेन्द्रीकृत उद्योगों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वजनिक स्वामित्व के केन्द्रीभूत उद्योगों की योजना का काम तीन पृथक् कौन्सिलों के हाथ में रहना चाहिए। पहले दो संगठनों का निर्माण सर्वथा विकेन्द्रीकृत आधार पर होना चाहिए। लैंड-कौंसिल की प्रारंभिक इकाई तथा गांव, समाज और विकेन्द्रीकृत उद्योगों की इकाई विविध काम करने वाली सहकारी कौंसिलें होनी चाहिए।

इन तीनों कौंसिलों के ऊपर चार सदस्यों का एक छोटा कमीशन रहना चाहिए। इन चार में से तीन तो तीनों कौंसिलों—भूमि, विकेन्द्रीकृत उद्योगों और सार्वजनिक स्वामित्व के केन्द्रीभूत उद्योगों—के प्रतिनिधि रहें और चौथा गैर-सरकारी सभापति। इनकी सहायता विशेषज्ञों का एक बोर्ड करता रहे।

प्लैनिंग कमीशन के संगठन से सर्वथा स्पष्ट है कि उसमें देश के विविध भागों, स्वार्थों और आर्थिक हितों का प्रतिनिधित्व पूर्णतया रहेगा और वह अपनी योजनाएं लोकतान्त्रिक आधार पर इस प्रकार बनायगा कि उसे कृषि और विकेन्द्रीकृत उद्योगों को फ़ायदा पहुँचता रहे।

वैदेशिक व्यापार करनेवाला पब्लिक कार्पोरेशन प्लैनिंग कमीशन से सम्बद्ध होना चाहिए, जिससे कि वैदेशिक व्यापार की योजना राष्ट्र की विविध आर्थिक आवश्यकताओं के अनुसार बनाई जा सके।

देश के आर्थिक, राजनीतिक और सदाचारिक जीवन में ऊपर-निर्दिष्ट क्रमशः और योजनापूर्वक की गई क्रान्ति द्वारा हम अन्ततोगत्वा एक ऐसे स्थान पर पहुंच जायंगे जहां सरकार का शासन न्यूनतम रहेगा। हमें निश्चय है कि इस प्रकार की क्रान्ति मनुष्य की भावना के विकास और प्राकृतिक विज्ञान की उन्नति से ही पूर्ण हो सकती है। सच तो यह है कि सर्वोदय-सिद्धांतों पर चलकर ही संसार एक बन सकता है। यह भी स्पष्ट है कि सर्वोदय तबतक सम्पन्न नहीं हो सकता जबतक कि भय, लोभ, द्वेष आदि समाज-विरोधी तत्वों के आधार पर चलनेवाले राष्ट्र के स्थान पर ऐसे सहकारी समाज की स्थापना न की जाय जिसमें कि सामाजिक इच्छा और सामाजिक सहकारिता की पूर्ति समाज सदाचारपूर्ण उपायों से बुद्धिपूर्वक करें। पाशविकता बल की सहायता लेने से सत्य भी निर्बल हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए और सामाजिक सहयोग के लिए मनुष्य जितना अधिक राज्य पर निर्भर करेगा उतना ही वह समाज से दूर हटता जायगा। विकेन्द्रीकृत समाज-व्यवस्था में अधिकाधिक समस्याओं का हल स्थानीय इकाइयों द्वारा किया जाता है। व्यक्ति शासन में सीधा और सोच समझकर भाग लेता है और राज्य की इच्छा की पूर्ति करवाने के लिए, विरोधियों को, संगठित सामाजिक जीवन के लोगों से वंचित कर दिया जाता है। इस प्रकार के समाज में ऐसी संस्थाओं का निर्माण किया जायगा जो कि राज्य की दमनकारी शक्ति के सहारे से नहीं, अपितु प्रेम, अहिंसा, असहयोग और सत्याग्रह के वल से अपना कार्य सफल करेंगी। इस प्रकार का समाज संगठित करने का अर्थ पुराने ग्राम-समाज अथवा नगर-राज्य (सिटी-स्टेट) की ओर को लौटना नहीं है, अपितु यह मनुष्य के उस संघर्ष की यशस्वी सफलता है जो कि वह व्यक्ति और समष्टि में समन्वय करने के लिए युगों से करता चला आ रहा है।

पुलिस और सेना के शासन में सरकार द्वारा अहिंसा का अधिकाधिक प्रयोग––सेना द्वारा रक्षा करने में हमारा विश्वास नहीं है। हम आरम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमारा परम लक्ष्य सेना के स्थान पर अहिंसामय रक्षा को प्रतिष्ठित करना है। जीवन और सम्पत्ति का विनाश, दुःख और खेद की वस्तुएं हैं, यश और अभिमान की नहीं। इसलिए सैनिकों को प्रतिष्ठित और सम्मानित करने की परम्परा तुरन्त समाप्त कर देनी चाहिए और उसके स्थान पर अहिंसापूर्वक रक्षा करते हुए साहस, दृढ़ता, सहिष्णुता और स्वार्थत्याग के जिन उत्कृष्ट गुणों का प्रकाशन हो उनका सम्मान किया जाना चाहिए।

परन्तु हमें मानना पड़ता है कि आज की परिस्थिति में सरकार तुरन्त सेनाओं की समाप्ति के आदेश पर आचरण नहीं कर सकेगी। परन्तु परिवर्तन-काल में भी अहिंसापूर्वक प्रतिरोध की भावना जागृत करने के लिए तत्काल प्रभावशाली उपायों का अवलम्बन किया जाना चाहिए। इसके लिए ईमानदारी, सार्वजनिक भावना, स्वार्थत्याग और अनुशासन के गुणों की अत्यन्त और मौलिक आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा विश्वास है कि आर्थिक और राजनैतिक अधिकारों के विकेन्द्रीकरण से अहिंसापूर्वक रक्षा करने की अवस्थाएं स्वयमेव उत्पन्न हो जायंगी। इन अवस्थाओं को जनता को अहिंसापूर्वक अनुशासन में रहने के लिए शिक्षित करके, शान्ति-सेनाओं का संगठन करके और अबतक जिन परिस्थितियों में हिंसामय उपायों का प्रयोग किया जाता है उनमें समय-समय पर अहिंसामय कार्रवाई करके उन्नत किया जा सकता है। तबतक इस दिशा में क्रमशः सैनिक व्यय घटाकर और स्थायी सेना के स्थान पर प्रादेशिक सेनाओं का संगठन करके आगे बढ़ना चाहिए।

कालान्तर में इन प्रादेशिक सेनाओं का स्थान भी शान्ति-सेनाएं ले लेंगी।

पब्लिक फाइनैन्स (सार्वजनिक कोष)

विकेन्द्री-कृत उत्पादन और राजनैतिक अधिकारों का आधार विकेन्द्रीकृत अर्थ-व्यवस्था होना चाहिए। शासन की प्रारम्भिक इकाइयों का स्वशासन वास्तविक और प्रभावशाली बनाने के लिए ऐसी व्यवस्था करनी पड़ेगी कि प्रादेशिक इकाइयों में सार्वजनिक आय का अधिकतर संग्रह और व्यय वे ही करें। हमारा लक्ष्य ऐसी अर्थ-व्यवस्था को विकसित करना होना चाहिए जिसमें कि सार्वजनिक आय का ५० प्रतिशत संग्रह और व्यय ग्राम-पंचायतें ही करें। शेष पचास प्रतिशत उनसे ऊपर के संगठनों के लिए छोड़ देना चाहिए। केन्द्रिक सरकार को टैक्स लगाने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। उसे अपनी आमदनी के लिए सार्वजनिक स्वामित्व केन्द्रीभूत उद्योगों और रेल, बिजली, डाक, तार, हवाई यातायात और मुद्रा आदि सार्वजनिक उपयोग के साधनों पर करना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो प्रान्त भी केन्द्र को कुछ आर्थिक सहायता दे सकते हैं।

टैक्सों की अदायगी नकदी, माल और मजदूरी के रूप में की जा सकती है। जमीन-लगान माल के रूप में ही अदा किया जायगा। जमीन-लगान माल के रूप में एकत्र करने की कठिनाई को विविध करनेवाली सहकारी संस्थाएं और प्रत्येक ग्राम में एक अनाज-बैंक संगठित करके हल कर लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायगा। स्थानीय अधिकारियों के वेतनों का अधिकतर भाग माल के रूप में ही दिया जायगा। प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों के उच्च अधिकारियों को भी वेतन का कुछ भाग माल के रूप में दिया जा सकेगा। ग्राम-पंचायतों के अधीन लगान की मजदूरी के रूप में अदायगी का लाभ यह होगा कि गरीब-से-गरीब आदमी भी बिना किसी कठिनाई के सरकारी कोष में अपना भाग दे सकेगा। जिस अर्थ-व्यवस्था को हम पुरस्कृत कर रहे हैं उसमें ऊँची आमदनियां समाप्त हो जायंगी और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार न्यूनतम हो जायगा। फलतः इन्कमटैक्स और कस्टम से होनेवाली सरकारी आमदनी घट जायगी। परन्तु गरीब-से-गरीब आदमी की अदायगी सरकारी कोष में मजदूरी द्वारा पहुँचने के कारण, राजकोष में नकदी का परिमाण कम हो जाने पर भी उसमें वास्तविक धन भरपूर रहेगा। अन्ततोगत्वा वास्तविक धन तो मजदूरी ही है। हमारे देश की प्राथमिक आवश्यकताएं अस्पतालों, सड़कों और स्कूलों की हैं। उन्हें लोग अपनी मेहनत से बनायंगे। इसलिए उनको बनवाने में राज्य को खर्च कम पड़ेगा। इसके अतिरिक्त शासन बहुत सरल हो जाने के कारण खर्चों में बहुत कमी हो जायगी। और ज्यों-ज्यों अहिंसा पर अमल होने लगेगा त्यों-त्यों पुलिस और सेना की तनख्वाहों का खर्च भी घटता जायगा। जब पुलिस और सेना से काम नहीं लिया जायगा तब उनको अपनी खाद्य और अन्य वस्तुओं की आवश्यकताएं स्वयं पूरा करने के काम में लगाकर सरकारी खर्च तुरन्त घटाया जा सकेगा। बुनियादी तालीम का आरम्भ हो जाने पर और स्वास्थ्य की आवश्यकताएं प्राकृतिक रहन-सहन तथा लोगों के सरल उपायों से इलाज द्वारा पूरी होने पर, शिक्षा और स्वास्थ्य सार्वजनिक आय के ऊपर बोझ नहीं रहेंगे।

केन्द्रीभूत अर्थ-व्यवस्था से विकेन्द्रीकृत अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन का कार्य बहुत सरल हो जायगा यदि सार्वजनिक अर्थ-व्यवस्था को केवल कर्त्तव्य और आवश्यकता की दृष्टि से देखा जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मण्डल का सर्वोदय-साहित्य

१. सर्वोदय
—गांधीजी

२. सर्वोदय-विचार
—विनोबा

३. सर्वोदय-तत्त्व-दर्शन
—गोपीनाथ श्रावन

४. सत्याग्रह मीमांसा
—रंगनाथ दिवाकर

५. सर्वोदय का घोषणा-पत्र
—विनोबा

६. अहिंसा की शक्ति
—रिचर्ड बी० ग्रेग

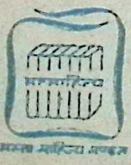

आठ आना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar